रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-६

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन चावडी बाजार, दिल्ली ११०००६
मुद्रक आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी आगरा २
अनुवादक राजेश दीक्षित

संस्करण १९८०
मूल्य दस रुपये

DRISHTIDAAN *by* Ravindra Nath Tagore Rs 10 00

दो शब्द

'रवीन्द्र-कथा-माला' की यह तीसरी पुस्तक है। इसमे रविबाबू की ४ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इन सभी कहानियों का अनुवाद मूल-बँगला से अक्षरश किया गया है। मूल भावों तथा शिल्प सौन्दय की रक्षा के लिए सस्कृत निष्ठा को नहीं त्यागा जा सका, परन्तु इससे अनुवाद की श्री-वृद्धि ही हुई है। भाषा-प्रवाह को भी ज्यो का-त्यो रखा गया है।

थोडे समय मे ही 'रवीन्द्र-कथा-माला' के छ-सस्करणों का हो जाना इसकी लोक प्रियता का प्रमाण है। प्रस्तुत सस्करण आद्यन्त सशोधित एव सम्पादित किया गया है। मुद्रण आदि मे भी विशेष सावधानी बरती गई है। आशा है, यह सस्करण पाठकों को और अधिक रुचिकर होगा।

—अनुवादक

कथा-सूची

दृष्टिदान

सुना है, आजकल अनेक बङ्गाली लडकियो को अपने ही प्रयत्नो से पति चुनना पडता है। मैंने भी वही किया, परन्तु देवता की सहायता से। मैं बचपन से ही अनेक व्रत एव शिव पूजा करती आई हूँ।

मेरी आयु आठ वर्ष की भी नही हो पाई थी कि विवाह हो गया। परन्तु पूर्व जन्म के पाप के कारण मैं अपने ऐसे पति को पाकर भी पूर्णत नही पा सकी। माता त्रिनयनी ने मेरी दोनो आखें ले ली। जीवन के अन्तिम क्षण तक पति को देखते रहने का सुख नही दिया।

बाल्यावस्था से ही मेरी अग्नि परीक्षा आरम्भ हो गई। चौदहवाँ वर्ष पूरा नही हो पाया था कि मैंने एक मृत शिशु को जन्म दिया। स्वय भी मृत्यु के समीप लगभग जा पहुँची थी, परन्तु जिसे दुःख भोगना होता है, वह भला मर कैसे सकता है। जो दीपक जलने के लिए

होता है, उसमे तेल कम नही होता। रात्रि की समाप्ति तक जल चुकने के बाद ही उसका निर्वाण होता है।

वच तो गई, परन्तु शरीर की दुबलता से, मन के सन्ताप से अथवा अन्य जो भी कारण हो, मेरे नेत्रो म पीडा आरम्भ होगई।

मेरे पति उन दिनों डाक्टरी पढ रहे थे। नवीन विद्या सीखने के उत्साह के वशीभूत हो, चिकित्सा करने का सुअवसर पाकर वे प्रसन्न हो उठे। उन्होंने स्वय ही मेरी चिकित्सा आरम्भ की।

मेरे बडे भाई उस वर्ष वकालत की परीक्षा देने के लिए कॉलिज म पढ रहे थे। उन्होंने एक दिन आकर मेरे पति से कहा—'क्या कर रहे हो ? कुमुद की दोनो आँखो को नष्ट कर बैठोगे। किसी एक अच्छे डाक्टर को दिखाओ।

मेरे पति ने कहा—'अच्छा डाक्टर आकर और क्या नई चिकित्सा करेगा ? ओषधियाँ तो सब जानता ही हूँ।'

दादा (बडे भाई) ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—'तब तो तुममे और तुम्हारे कॉलेज के बडे साहब (प्रिंसिपल) मे कोई अन्तर ही नहीं है ?'

पति ने कहा—'कानून पढ़ते हो, डाक्टरी को तुम क्या समझो ? तुम जब विवाह करोगे, उस समय तुम्हारी पत्नी की सम्पत्ति को लेकर यदि कभी मुकद्दमा चला, तब क्या तुम मेरे परामर्श पर चलोगे ?'

मैं मन ही मन सोचती थी, राजा-राजाओं मे युद्ध होने पर सिपाहियो की सबसे अधिक मुसीबत है। पति के साथ झगडा हुआ दादा का, परन्तु दोनो ओर से चोट मुझ पर ही पडने लगी। फिर सोचा—दादा ने जब मुझे दान ही कर दिया, तब मेरे सम्बन्ध मे कर्तव्य को लेकर यह सब दौडधूप किसलिए ? मेरा सुख-दुःख मेरा रोग और आरोग्य, यह सब तो अब मेरे पति का ही है।

उस दिन मेरे नेत्रो की इस सामान्य चिकित्सा को लेकर मेरे दादा के साथ मेरे पति का जैसे एक मन मुटाव हो गया। एक तो वसे ही मेरे नेत्रो से जल बहता था, अब उस जल की धारा और अधिक बढ गई, उसका वास्तविक कारण मेरे पति अथवा दादा में से कोई भी उस समय नही समझ सके।

मेरे पति के कॉलेज चले जाने पर, एक दिन शाम को अचानक ही मेरे दादा डाक्टर को ले आये। डाक्टर ने परीक्षा करके कहा, 'साव-धानी न बरतने पर पीडा और अधिक बढ जाने की सम्भावना है।' यह कहकर उसने न जाने क्या-क्या दवाइयाँ लिख दी। दादा ने उसी समय उन औषधियो को मँगवाने के लिए आदमी भेज दिया।

डाक्टर के चले जाने पर मैंने दादा से कहा—'दादा ! आपके पाँव पडती हूँ, मेरी जो चिकित्सा चल रही है, उसमे किसी प्रकार की रुकावट मत डालो।'

मैं बचपन से ही दादा से बहुत डरती रही हूँ, उनसे मुँह खोल-कर इस प्रकार कुछ कह सकी, यह मेरे लिए एक आश्चयजनक घटना थी। परन्तु मैं अच्छी तरह समझ गई कि मेरे पति से छिपाकर दादा मेरी जिस चिकित्सा की व्यवस्था कर रहे है, वह मेरे लिए अशुभ के अतिरिक्त शुभ नही।

दादा भी मेरी ढिठाई को समझकर कुछ आश्चयचकित हुए। कुछ क्षण चुप रहकर, विचार करने के उपरान्त बोले—'अच्छा, मैं अब डाक्टर को नहीं लाऊँगा परन्तु जो औषधि आ रही (मँगाई) है, उसे विधिपूवक सेवन करना—फिर देखूँगा।' औषधि के आजाने पर, मुझे उसके प्रयोग की विधि समझाकर दादा चले गए। पति के कालेज से लौटकर आने के पहले ही मैंने उन शीशियों, डिब्बियो एव विधियो आदि को यत्नपूवक अपने आँगन के छोटे से कुँए के भीतर फेंक दिया।

दादा के साथ कुछ विरोध करने के लिए ही मेरे पति जैसे और भी त्रिगुण चेष्टा से मेरी आखो की चिकित्सा करने म प्रवृत्त हो गए। जब-तब औषधि बदली जाने लगी, आँखो पर पट्टी बाँधी, चश्मा पहिना, आखो मे बूँद-बूँद करके दवा डाली, पाउडर लगाया, दुर्गंधित मछली का तल पीने से जब भीतर की अन्तडिया बाहर निकलने को उद्यत हुईं, तब उन्हें भी रोककर रह गई। स्वामी पूछा करते—'कैसा लगता है ?' मैं कहती—'अब बहुत फायदा है।' मैं मन ही मन यह समझने का प्रयत्न भी करती कि फायदा ही हो रहा है। जिस समय पानी अधिक बहने लगता उस समय सोचती—'पानी का बह जाना ही अच्छा लक्षण है।' जब पानी बहना बन्द हो जाता, तब सोचती—'यही तो आरोग्य के पथ पर खडा कर देगा।'

परन्तु कुछ समय बाद यन्त्रणा (पीडा) असह्य हो उठी। आँखो स धुँधला दीखने लगा एव माथे का दद मुझे स्थिर नही रहन देता था। देखा, मरे पति भी जैसे कुछ अप्रतिभ (लज्जित) हो उठे हैं। इतन दिन बाद अब किस बहाने से डाक्टर को बुलाया जाय, इसे वे निश्चित नही कर पा रहे थे।

मैंने उनसे कहा—दादा का मन रखने के लिए एक बार एक डाक्टर को बुला लेने मे दोष क्या है ? इस बात को लेकर वे (दादा) व्यर्थ ही नाराज हो गए हैं इससे मेरे मन को कष्ट होता है। चिकित्सा तो तुम्ही कराओगे फिर भी एक डाक्टर का रहना अच्छा ही है।'

पति ने कहा—'ठीक कहती हो।' यह कह कर उसी दिन एक अँग्रेज डाक्टर को लेकर हाजिर हो गये। क्या बातें हुईं पता नही परन्तु मन को लगा जैसे डाक्टर साहब न मरे पति की कुछ भर्त्सना की, वे नतमस्तक, निरुत्तर खडे रहे।

डाक्टर के चले जाने पर मैंने अपने पति का हाथ पकडकर कहा—कहाँ से एक गँवार-गोरे-गधे को पकडकर ले आए किसी एक

देशी डाक्टर को ले आते। मेरी आँखो के रोग को वह क्या तुम्हारी अपक्षा अधिक समझ सकेगा ?

पति न कुछ कुण्ठित होते हुए कहा—आँखो का आपरेशन कराना आवश्यक हो गया है।'

मैंने कुछ क्रोध-सा दिखाते हुए कहा—'आपरेशन कराना होगा, यह तो तुम जानते ही थे, परन्तु पहले यह बात तुमने मुझसे छिपा रक्खी थी। तुम क्या समझते हो, मैं डरूँगी ?'

पति की लज्जा दूर हो गई, वे बोले—आँखो का आपरेशन होगा, यह सुनकर भी जो भयभीत न हो, पुरुषो मे ऐसे वीर लोग हैं ही कितने ?'

मैं मजाक करती हुई बोली—पुरुषो का वीरत्व केवल स्त्रियो के पास तक ही है।'

पति उसी समय म्लान-गम्भीर होकर बोले—'यह बात ठीक है। पुरुषो मे केवल अहकार ही रहता है।'

मैंने उनकी गम्भीरता को उडाते हुए कहा—'अहकार मे भी क्या तुम लोग स्त्रियो की बराबरी कर सकते हो ? उसमे भी हमारी ही जीत होती है।'

इसी बीच दादा आ गए तो मैं उन्हे एकान्त मे लेजाकर बोली—'दादा! आपके उसी डाक्टर की व्यवस्थानुसार चलने से मेरी आँखे अच्छी होती चली जा रही थी, परन्तु एक दिन भूल से पीने की दवा आखो मे लगा ली, तभी से आखें गई गई सी हो उठी हैं। मेरे पति कहते हैं कि आँखो का आपरेशन कराना पडेगा।'

दादा बोले—मैं समझ रहा था कि तेरे पति की चिकित्सा ही चल रही है, इसीलिए मैं और अधिक नाराज होकर इतने दिनो तक नही आया।'

मैं बोली—'नही, मैं तो चुपचाप उसी डाक्टर की व्यवस्था-

नुसार चलती रही हूँ। पति को इसलिए नही बतलाया कि वे फिर नाराज हो जाएँगे।

स्त्री का जन्म लेकर इतना झूठ भी बोलना पडता है। दादा के मन को भी कष्ट नही दे सकती, पति के यश को नष्ट करके भी नही चला जा सकता। माँ बनकर गोद के शिशु को बहलाना पडता है, स्त्री होकर शिशु के पिता को भी बहलाना पडता है--स्त्रिया के लिए इतने छल की आवश्यकता पडती है।

इस छलना का यह फल हुआ कि अधी होने से पूव मैं अपने दादा और पति का मिलन देख सकी। दादा ने सोचा--'चुपचाप चिकित्सा करात रहने से ही यह दुघटना घटी।' पति ने सोचा--'पहले ही यदि दादा का परामश मान लेते तो अच्छा रहता।' इस प्रकार सोचते हुए दोना ही अनुतप्त हृदय से भीतर ही भीतर क्षमा प्रार्थी बन, परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती बन गए। पति दादा का परामश लेने लगे, दादा भी विनीत भाव से सब विषया म मेरे पति के सुझावा पर निभरता प्रकट करने लग।

अन्त म दोनो के परामश स एक दिन अँग्रेज डाक्टर ने आकर मेरी बाँई आँख का आपरेशन किया। कमजोर आँख उस आघात की चोट को सहन नही कर सकी उसकी क्षीण ज्योति भी अचानक समाप्त हो गई। उसके बाद दूसरी आँख भी दिन प्रति दिन धीरे धीरे अधकार से आवृत्त हो गई। बाल्यकाल मे शुभदृष्टि के दिन जो चन्दन चर्चित तरुणमूर्ति मेरे सम्मुख प्रथम बार प्रकट हुई थी, उसके ऊपर सदैव के लिए पर्दा पड गया।

एक दिन पति मेरी शय्या के पाश्व मे आकर बोले--'तुम्हारे सम्मुख और मिथ्या प्रशसा नहीं करूँगा, तुम्हारी दोना आँखा को मैंने ही नष्ट किया है।'

देखा उनके कण्ठ-स्वर म अश्रुजल भर आया है। मैंने दोनो

हाथा से उनके दाहिने हाथ को पकडकर कहा—'खूब किया, वस्तु तुम्हारी थी तुम्ही ने ले ली। विचार करके देखो, यदि किसी डाक्टर की चिकित्सा से मेरी आँखें नष्ट हो जाती तो मुझे क्या सान्त्वना मिलती। होनहार जवकि मिटती ही नही, तब मेरी आँखो को तो कोई भी नही बचा सकता था। वे आँखें तुम्हारे ही हाथ से चली गइ, यही मेरे अधे-पन का एकमात्र सुख है। जिस समय पूजा के फूल कम पड गए थे, उस समय रामचन्द्र अपने दोनो नेत्रों को निकाल कर देवता पर चढाने के लिए गए थे मैंने भी अपने देवता को अपनी दृष्टि दी है—अपनी पूर्णिमा की ज्योत्सना, अपने प्रभात का आलोक, अपने आकाश की नीलिमा, अपनी पृथ्वी की हरियाली—सब कुछ तुम्ह देदी, तुम्हारे नेत्रो को जिस समय जो अच्छा लगे वह मुझे मुँह से बता देना, उसे मैं तुम्हारे नेत्रा का देखा हुआ प्रसाद समझकर ग्रहण करूँगी।

मैं इतनी बात कह नही सकी, मुह से इस प्रकार वाला भी नही जा सकता, ये सब बातें मैं बहुत दिनों से सोचती रहती थी। बीच-बीच म जब कभी अवसाद आता, निष्ठा का तेज म्लान हो जाता, मन अपने को वचित, दु खित और दुर्भाग्य दग्ध समझने लगता, उस समय मैं अपन मन मे यह सब बातें कहलवा लिया करती, इस शांति, इस भक्ति का अवलम्बन लेकर अपने दु ख की अपेक्षा अपने को उच्च बनाकर तौलने की चेष्टा करती। उस दिन कितनी ही वातो द्वारा तथा कितने ही मौन इङ्गितो द्वारा अपने मन के भावो को उन्ह किसी प्रकार समझा सकी थी। उन्होने कहा—'कुमु! मूखता द्वारा तुम्हारा जो कुछ नष्ट कर दिया है, उसे पुन लौटाकर तो नही दे सकता, परन्तु जहाँ तक मेरी सामर्थ्य है तुम्हारे नेत्रो का अभाव दूर करने के लिए तुम्हारे साथ-साथ ही रहा करूँगा।'

मैंने कहा—'यह तो कोई काम की बात नही है। तुम जो अपनी गृहस्थी को एक अधो का अस्पताल बनाकर रखना चाहते हो,

उसे मैं किसी प्रकार नही होने दूगी । तुम्हें एक और विवाह करना ही होगा ।'

किसलिए यह विवाह करना नितान्त आवश्यक है, इसे सविस्तार कहन के पूव मरे कण्ठ मे एक प्रकार के अवरोध का उपक्रम हो आया । तनिक खासकर तनिक सँभलकर कुछ कहना ही चाहती थी, इसी समय मेरे पति उच्छवसित आवेग से बोल उठे—'मैं मूढ हूँ, मैं अहङ्कारी हूँ परन्तु उसी कारण मैं पाखण्डी नही हूँ । अपन हाथों से तुम्हें अ धी बनाया ह । अन्तत उसी दोष से तुम्हारा परित्याग कर यदि दूसरी स्त्री को ग्रहण करूँ तो अपन इष्टदेव गोपीनाथ की शपथ खाकर कहता हूँ मैं जमे ब्रह्महत्या और पितृ हत्या का पातकी होऊँ ।'

इतनी बडी शपथ नही खाने देती बीच म ही बाधा देती, परन्तु आँसू उस समय छाती से निकलकर, कण्ठ को दबाकर, दोना नत्रो को आवृत्त कर पर पडने की चेष्टा कर रहे थे, उन्ह सम्वरण करके बात कहना सम्भव नही हो सका । उ होंने जो कुछ कहा उसे सुनकर, अत्यन्त आनन्द के उद्वेग स तकिए म मुँह छिपाकर रोने लगी । मैं अन्धी हूँ, तो भी व मुझे छोडेंगे नही । दुखी के दुख की भाति मुझे हृदय से लगाकर रखेंगे । इतना सौभाग्य मैं नही चाहती परन्तु मन स्वाथ परायण ही है ।

अन्त म आँसुओ को पहली वर्षा के शीघ्र समाप्त हो जान पर, उनके मुख को अपनी छाती के समीप खीचकर बोली— ऐसी भयानक शपथ क्या खाई ? मैंने क्या तुमसे अपने सुख के लिए विवाह करने का कहा था ! *तुम्ह सौत को सौंपकर मैं अपना स्वार्थ साधन करती । आँखा* के अभाव से तुम्हारे जो काम स्वय नही कर पाती, उन्ह मैं उसस करा लिया करती !

स्वामी ने कहा— काम तो दासी भी कर देती है । मैं किस काम की सुविधा के लिए एक दासी को ब्याह कर अपनी इस देवी के साथ

एक आसन पर बैठा सकता हूँ ?' कहकर मेरे मुँह को उठाकर मेरे ललाट का एक निमन चुम्बन किया, उस चुम्बन द्वारा जैसे मेरा तीसरा नेत्र खुल गया, उसी क्षण मेरे देवीत्व का अभिषेक हो गया। मैंने मन-ही मन कहा—'यही ठीक है। जब अन्धी हो गई हूँ, तब मैं इस बाहरी दुनियाँ की गृहिणी बनकर ही नही रह सकूँगी, अब मैं ससार स ऊपर उठकर, देवी बनकर, अपने पति का कल्याण करूँगी।' अब झूठ नही, छल नही, गृहिणी रमणी की जो कुछ क्षुद्रता एव कपट है, उस सबको दूर कर दिया है।

उस दिन दिनभर अपने साथ ही एक प्रकार का विरोध चलता रहा। कठिन शपथ म बँधकर स्वामी अब किसी प्रकार भी दूसरी बार विवाह नही कर सकेगे, वह आनन्द मन के भीतर जसे एकबारगी दशन कर उठा, किसी भी प्रकार उसे त्याग नही सकी। अब मुझमे जिस नवीन देवी का आविर्भाव हुआ था, उसने कहा—'शायद ऐसा दिन भी आ सकता है, जब इस शपथ पालन की अपेक्षा विवाह कर लेने से ही तुम्हारे पति का मगल होगा।' परन्तु मुझमे जो पुरानी नारी थी, उसने कहा—'भले ही हो, परन्तु जब उन्होंने शपथ कर ली है, तब तो वे दूसरा विवाह कर ही नही सकते।' देवी ने कहा—'सो हो, परन्तु इसमे तुम्हारे खुश होने का कोई कारण नही है।' मानवी ने कहा—'सब समझती हूँ, परन्तु जब वे शपथ कर चुके हैं, तब इत्यादि।' बार-बार वही एक बात। देवी ने उस समय केवल निरुत्तर हो भौंह चढाली एव एक भयानक आशका के अधकार से मेरा समस्त अन्तःकरण आच्छान्न हो गया।

मेरे अनुतप्त स्वामी, दास-दासियों का निषेध कर स्वय ही मेरे सब कामों को करने मे प्रवृत्त हो गए। स्वामी के ऊपर तुच्छ बातों के लिए भी इस प्रकार निरुपाय निर्भर रहना पहल पहल अच्छा ही लगा। कारण इस प्रकार उन्हें सदैव ही अपने समीप पाती थी। आँखों से उन्हें

देख न पाने के कारण उन्हें सर्वदा अपने समीप पाने की आकांक्षा अत्यन्त बढ़ उठी। पति-सुख का जो अंश मेरे नेत्रों के हिस्से में पड़ा था, उसी को अब अन्य इन्द्रियों ने बाँटकर, अपना-अपना भाग बढ़ा लेने की चेष्टा की। जब मेरे पति अधिक देर तक किसी काम में बाहर रहते तो मन को लगता, मैं जैसे शून्य में रह रही हूँ मैं जैसे कहीं से कुछ भी नहीं ले सकती, मेरा जैसे सबकुछ खोगया है। पहले स्वामी जब कॉलिज जाते थे, तब देर हो जाने पर मार्ग की ओर खुलने वाली खिड़की को कुछ खोलकर राह देखती खड़ी रहती थी। जिस दुनियाँ में वे घूमा फिरा करते थे उस दुनियाँ को मैंने नेत्रों द्वारा अपने साथ ही बाँधकर रख लिया था। आज मेरा दृष्टिहीन सम्पूर्ण शरीर उन्हें ढूँढने की चेष्टा करता है। उनकी पृथ्वी के साथ मेरी पृथ्वी का जो प्रधान पुल जुड़ा हुआ था, वह आज टूट गया है। अब उनके तथा मेरे बीच एक दुस्तर अन्धता है अब मुझे केवल निरुपाय भावप्रभाव से बैठे रहना पड़ता है, कब वे अपनी इस पार से मेरी इस पार में आकर स्वयं उपस्थित होंगे। इसलिए अब, जब क्षणभर के लिए भी वे मुझे छोड़कर चले जाते हैं तब मेरा सम्पूर्ण अन्ध शरीर उद्यत होकर उन्हें पकड़ने को चल देता है हाहाकार करके उन्हें पुकारने लगता है।

परन्तु इतनी आकांक्षा इतना भरोसा तो अच्छा नहीं। एक तो पति के ऊपर स्त्री का भार ही यथेष्ट है, उसके ऊपर फिर अन्धेपन का प्रकाण्ड बोझ लादना अच्छा नहीं। मेरा यह विश्वव्याप्त अन्धकार इसे मैं ही वहन करूँगी। मैंने एकाग्रमन से प्रतिज्ञा की—अपनी इस अनन्त अन्धता के द्वारा मैं अपने पति को अपने साथ बाँधकर नहीं रक्खूँगी।

थोड़े ही समय में केवल शब्द गन्ध-स्पर्श के द्वारा मैं अपने समस्त अभ्यस्त-कर्म कर लेना सीख गई। यही क्या अपने अनेकों गृहकार्यों को पहले की अपेक्षा कहीं अधिक निपुणतापूर्वक करने लगी। इस समय मन को लगने लगा—दृष्टि हम लोगों के कार्य में जितनी सहायता पहुँचाती है

उनकी अपेक्षा कही बहुत—अधिक विमिप्न भी बना देती है। जितना दख लेन भर से ही काम अच्छी तरह हो सकता है, आँखें उसकी अपक्षा बहुत अधिक देखती है। एव आँखें जिस समय पहरेदार का काम करती है, उस समय कान आलसी हो जात हैं उन्ह जितना सुनना उचित है, उसकी अपक्षा वे कम सुनत है। अब चञ्चल नेत्रा की अनुपस्थिति मे मरी अन्य समस्त इद्रियाँ अपन कत्तव्य को शान्त एव सम्पूण भाव से करन लगी।

अब अपन स्वामी को अपना ओर कोई काम नहीं करने देती थी तथा उनके सम्पूण काय को फिर पहल की भाँति मैं स्वय ही करने लगी।

पति ने मुझसे कहा—'अपने प्रायश्चित से मुझे वञ्चित कर रही हो।

मने कहा—'तुम्हारा प्रायश्चित् किसलिए है, मैं नही जानती परन्तु अपने पाप का भार मैं क्या बढाऊँ ?'

चाहे जो कह, मैंने जब उन्हे मुक्ति दी, तब व नि श्वास छोडकर जस बच गए। अन्धी स्त्री की सवा का आजन्म-व्रत लेना पुरुषो का काम नही है।

मेरे पति डाक्टरी पास कर, मुझे साथ लेकर देहात मे चले गए।

गाँव मे आकर, जैसे माता की गोद म आगई ऐसा लगा। मैं आठ वष की आयु म ही गाव छोडकर शहर मे आगई थी। इस बीच दस वर्षों म जन्मभूमि मेरे मन मे छाया की भाँति अस्पष्ट हो चली थी। जब तक नेत्र थे, कलकत्ता शहर मेरे चारो ओर, अन्य सम्पूण-स्मृतियो को आट म छिपाए हुए खडा था। आँखो के जाते ही समझ गई, कलकत्ता केवल आँखो को भुलाए रखन वाला शहर ही है, इससे मन नही भरा जा सकता। दृष्टि खोने मात्र से ही मेरा वह बाल्यकाल का देहाती

गाँव दिन छिपने पर नक्षत्र लोक की भाँति मेरे मन के भीतर उज्ज्वल हो उठा।

अगहन मास के अन्त म हम लोग हासिमपुर चले गए। नया दश, चारा ओर देखने मे कैसा है, इसे नही समझ सकी। परन्तु बाल्यकाल की उसी गन्ध एव अनुभूतियो ने सम्पूण शरीर को भली भाँति ढँक लिया। वही ओस से भीगे नए जुत हुए खेतो से आने वाली प्रात कालीन वायु, वही स्वण से ढाली गई अरहर एव सरसा के खेता से आकाश को भरने वाली कोमल सुमधुर गन्ध, वही चरवाहा के गीत, इतना ही क्यो टूटी फूटी सडको पर चलने वाली बैलगाडियो का शब्द तक मुझे पुलकित करने लगा। मरी वही, जीवन आरम्भ करत समय की अतीत स्मृति अपनी अनिवचनीय ध्वनि और गन्ध लेकर प्रत्यक्ष-वत्तमान की भाति मुझे घेर बैठी, अ धे नत्र उसका कोई प्रतिवाद नही कर पाए। मैं उसी बाल्यावस्था के बीच लौट गई, केवल माँ को नही पा सकी। मन ही मन देख पाया, दादी माँ अपन विरल केशा का खाल कर धूप की ओर पीठ किए, आगन मे 'बडी दे रही हैं परन्तु उनके उस कोमल कम्पित प्राचीन दुबल कण्ठ से, हमारे गाव के साधू भजनदास के देहतत्व गान के गुजन स्वर को नही सुन पाई, वह नवान्न का उत्सव शीतकाल के शिशिर-स्नात आकाश क बीच सजीव होकर जाग उठा। परन्तु मूसल द्वारा नये धान कूटन वालियो के बीच अपनी छोटी छोटी ग्राम्य सहेलियो का समागम कहाँ चला गया ! सन्ध्याकाल म समीप कही से हाम्बा ध्वनि' सुनाई पडती, उस समय मन का लगता मा सान्ध्य दीप को हाथ मे लिये ग्वाल घर म उजाला दिखाने क लिये जा रही हैं, उनके साथ ही भीगे हुए पुआल तथा भुस के जलने स धुँए की गन्ध जैसे हृदय के भीतर प्रवेश कर रही है और सुनाई पडता पोखर के उस पार विद्यालकारो क मन्दिर से काँसे के घण्टे का शब्द आरहा है। किसी ने जसे मेरे उस बचपन के आठ वर्षों के बीच म से

उसका समस्त सार अश निकालकर, केवल उसके रस तथा सुगध का मेरे चारा ओर ढेर बनाकर रख दिया हो।

इसके साथ ही अपने उस बाल्यावस्था के व्रत एव प्रभातकाल मे पुष्प ताडकर शिव पूजन की बातें याद हो आइ। यह बात स्वीकार करनी होगी, कलकत्ते की बातचीत आलाचना, आवागमन की गोलमाल से बुद्धि म एक विकार-सा भर जाता है। धम-कम, भक्ति एव श्रद्धा के बीच निमल सरलता नही रह पाती। उस दिन की बात मुझे याद आती है, जिस दिन अन्धी होन के बाद कलकत्ते मे मेरे गाँव की रहने वाली एक सखी न आकर मुझसे कहा था—'तुझे क्रोध नही आता कुमु? मैं होती तो एसे पति का मुह भी नही देखती।' मैं बोली—'भाई, मुँह देखना तो बन्द है ही, उसके लिए इन जली आँखो पर ही गुस्सा आता है, परन्तु पति के ऊपर क्रोध करने क्यो जाऊँ?' यथा समय डाक्टर नही बुलाया-कहकर लावण्य मेरे पति के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुई थी एव मुझे भी क्रुद्ध करने की चेष्टा की थी मैंने उसे समझाया—'ससार मे रहते हुए इच्छा-अनिच्छा, ज्ञान-अज्ञान और भूल भ्रान्ति से दुख सुख आदि अनेको बातें होती रहती हैं परन्तु मन के भीतर यदि भक्ति स्थिर रखी जा सके तो दुख के भीतर भी एक शान्ति मिलती है ऐसा न होने पर केवल गुस्सेबाजी, झगडे-टटे और बक बक मे ही जीवन कट जाता है। अधी हो गइ यही बहुत बडा दुख है उसके बाद पति से भी विद्वेष करके दुख का बोझ क्यो बढाया जाय?' मेरी जसी बच्ची के मुँह स पुरातन काल की बातें सुनकर लावण्य गुस्सा होकर, अवज्ञापूवक मस्तक हिलाती हुई चली गई। पर तु कुछ भी कहो बातो मे विष था, बात एक बार मे ही व्यथ नही हो जाती। लावण्य के मुख से निकली क्रोध की बात मेरे मन मे दो एक स्फुलिङ्ग छोड गई, मैंने उन्हें पाँवो से कुचलकर बुझा दिया, परन्तु तो भी दो एक दाग रह गया। इसीलिए कहती हूँ, कलकत्ते मे अनक तक अनेक बातें है वहा देखते-देखते बुद्धि का अकाल मे ही

परिपक्व हो जाना कठिन होता है।

देहात मे आकर मेरी उसी शिव-पूजा की शीतल शेफाली फूलो की गन्ध, हृदय की सम्पूण आशा और विश्वास मेरे उसी शिशुकाल की भाति नवीन और उज्ज्वल हो उठे। दवता द्वारा मेरा हृदय एव मरा ससार परिपूण हा गया। मैं नत मस्तक होकर लोटन लगी। बोली—'हे देव! मेरी आँखे भले ही चली गइ तुम तो मेरे हो।'

हाय गलत कहा था। 'तुम मेर हो'—यह बात भी अहङ्कार की बात थी। मैं तुम्हारी हूँ—केवल यही कहने का अधिकार है। कुछ भी नही ठहर पाता परन्तु मुझे ठहरना ही होगा। किसी के ऊपर कोई जोर नही केवल अपन ऊपर ही है।

कुछ समय बहुत सुख से बीता। डाक्टरी मे मेरे पति की कीर्त्ति बढने लगी। हाथ म कुछ रुपया भी इकटठा हो गया।

परन्तु रुपया अच्छी वस्तु नही है। उससे मन दब जाता है। मन जिस समय राज्य करता है उस समय वह अपन सुख का स्वय ही सृजन कर सकता है परन्तु जब धन सुख सचय करने का भार लता है तब मन को कोई काम नही रहता। उस समय, पहले जहा मन का सुख था उस स्थान पर चीज वस्तुएँ असबाब आदि इकट्ठी होकर बैठ जाती हैं। उस समय सुख के बदले केवल सामग्री पाई जाती है।

किसी विशेष बात या विशेष घटना का उल्लेख नही कर सकूँगी परन्तु अन्धे की अनुभव शक्ति अधिक कहिये अथवा क्या कारण था नही जानती, अवस्था की उन्नति के साथ-साथ अपन स्वामी म होन वाले परिवतन को मैं अच्छी तरह समझन लगी। यौवन के प्रारम्भ मे न्याय-अन्याय धम-अधम के सम्बन्ध मे मरे पति को जिस वेदना का बोध होता था वह जसे प्रतिदिन जड होती चली जा रही थी। याद है, वे एक दिन कहते थे—डाक्टरी को केवल जीविका के लिए सीख रहा हूँ सो नही है इससे अनेकों गरीबो का उपकार भी कर सकूगा। जो

डाक्टर दरिद्र-बीमार के दरवाजे पर पहुँचकर भी पहले फीस न मिल जाने से नाडी नही देखना चाहते, उसकी बात कहते हुए घृणा से उनका बोझ रुक जाता था। मैं समझती हूँ, अब वह दिन नहीं हैं। अपन एक मात्र बालक की प्राण रक्षा के लिए एक दरिद्र-स्त्री ने पाव पकड लिये थे, उन्होंने उसकी उपेक्षा करदी, अन्त मे मैंने अपने माथे की शपथ दिलाकर उन्हें चिकित्सा करने भेजा था, परन्तु मन लगाकर काम नही किया। जब हमारे पास पैसा कम था, तब अन्याय द्वारा उपार्जन को मेरे पति किन आँखो से देखते थ, उसे मैं जानती हूँ। परन्तु बैंक म इस समय बहुत रुपए जमा हैं, अब एक धनी आदमी का गुमाश्ता आकर, उनके साथ चुपचाप दो दिन तक बहुत-सी बातें कर गया है, उसन क्या कहा, सो मैं कुछ नही जानती परन्तु उसके पश्चात जब वे मेर पास आए तो अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अन्य अनेक विषयो की अनेक बाते की उस समय मुझे अपने अन्तःकरण की स्पर्श शक्ति द्वारा ज्ञात हुआ कि वे आज मस्तक पर कलक लगाकर आए हैं।

अन्धी होने स पूर्व मैंने जिन्हे अन्तिम बार देखा था, मेरे वे स्वामी कहा हैं? जिन्होंने मेरे दृष्टि हीन दोनो नेत्रो के बीच एक चुम्बन करके मुझे एक दिन देवी पद पर अभिषिक्त किया था मैं उनका क्या कर सकी? एक दिन एक शत्रु की आंधी आन से जिनका अचानक पतन हो जाता है वे एक और हृदयावेग स पुन ऊपर उठ सकते हैं परन्तु यह जो दिन दिन पल पल पर मज्जा क भीतर कठोर होने जाना है बाहर से बढकर उठने-उठत अन्तःकरण को तिल तिल करके दबाते जाना है, इसका प्रतिकार सोचत समय कोई भी मार्ग ढूढे से नही मिल पाता।

पति के साथ मेरा आखो से देखने का जो विच्छेद घटित हुआ, वह कुछ भी नही है परन्तु प्राणो के भीतर जो हाफनी उठती है, जब मन को लगता है मैं जहा हूँ, वे वहा नही हैं मैं अन्धी हूँ, ससार

वे प्रकाश-वर्जित अंत प्रदेश म अपने उस पहिली आयु के नवीन प्रेम, अक्षुण्ण भक्ति, अखण्ड विश्वास को लेकर बैठी हूँ—अपने देव मन्दिर म, जीवन के आरम्भ म, मैंने बालिका के नन्हे-नन्हे हाथो से जिन शेफाली के फूलो का अर्घ्यदान किया था, उनकी आस अभी तक सूखी नही है और मेरे पति इस छाया शीतल चिर नवीनता के देश को छोडकर रुपया कमाने के पश्चात् ससार रूपी मरुभूमि म कहाँ अदृश्य होकर चले जारहे हैं। मैं जिन पर विश्वास करती हूँ, जिन्हे धर्म कहती हूँ, जिन्हें सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति से अधिक रहकर जानती हूँ वे बहुत दूर होकर, मुझ पर हँसते हुए कटाक्षपात कर रहे हैं। परन्तु एक दिन यह विच्छेद नही था, प्रारम्भिक अवस्था म हमने एक ही मार्ग पर यात्रा आरम्भ की थी, उसके बाद कब से मार्ग म अन्तर पडना आरम्भ हुआ उसे वे भी नही जान पाये मैं भी नही जान पाई, अन्त म आज मैं फिर उन्हें पुकार कर उत्तर नही पा रही हूँ।

कभी-कभी सोचती हूँ, सम्भवत अन्धी होने के कारण सामान्य बातो को बढा चढाकर देख रही हूँ। आँखें होती तो मैं सम्भवत ससार को ठीक ससार के समान ही पहिचान पाती।

मेरे पति ने भी मुझे एक दिन इसी बात को समझाया था। उस दिन प्रात काल एक वृद्ध मुसलमान अपनी पौत्री के हैजे की चिकित्सा के लिए उन्हे बुलाने आया। मैं, सुन सकी उसने कहा—'बेटा! मैं गरीब हूँ परन्तु अल्लाह तुम्हारा भला करेंगे।' मेरे पति ने कहा—'अल्लाह यदि करेंगे तो केवल उसी से हमारा काम नही चलेगा, तुम क्या करोगे पहले यह तो सुनू?' सुनते ही सोचा 'ईश्वर ने मुझे अन्धी कर दिया परन्तु बहरी क्यो नही बना दिया!' मैंने उसी समय महरी द्वारा उसे अन्त पुर की खिडकी के दरवाजे से बुलवा लिया कहा—बाबा! तुम्हारी नतिनी के लिए यह डाक्टर का खर्च कुछ दे रही हूँ

तुम मेरे पति की मङ्गल-कामना करते हुए मुहल्ले के हरीश डाक्टर को बुला ले जाओ।'

परन्तु सारे दिन मेरे मुँह को अन्न नहीं रुचा। पति ने अपरान्ह कालीन निद्रा से जगकर जिज्ञासा की—'तुम्ह उदास क्यो देख रहा हूँ?' पूर्व कालीन अभ्यस्त एक उत्तर मुँह पर आ रहा था—'नहीं, कुछ नहीं हुआ, परन्तु छलना का समय बीत चुका था, मैंने स्पष्ट रूप से कहा— कितने ही दिनो म तुम्हे कहने का सोच रही थी, परन्तु बोलते समय भूल जाती थी कि ठीक-ठीक क्या कहना है। अपने हृदय की बात मैं समझाकर कह सकूगी या नहीं, नहीं जानती, परन्तु तुम अवश्य अपने मन म समझ सकते हो, हम दो व्यक्तियो ने जिस प्रकार एक होकर जीवन आरम्भ किया था आज वह अलग हो गया है।' पति ने हँसकर कहा—'परिवर्तन ही तो ससार का धर्म है।' मैंने कहा—'रुपया पैसा, रूप-यौवन सभी का परिवर्तन होता है परन्तु नित्यवस्तु (अपरिवर्त्तनीय) क्या कुछ भी नहीं है।' तब वे कुछ गम्भीर होकर बोले— देखो, अन्य स्त्रियाँ सचमुच के अभाव को लेकर दुखी होती हैं—किसी का पति उपार्जन नहीं करता, किसी का पति प्यार नहीं करता, (परन्तु) तुम आकाश से दुख को खीच कर लाती हो।' मैं उसी समय समझ गई—अन्धापन मेरी आखो म एक अञ्जन लगाकर मुझे इस परिवर्तनशील ससार से बाहर ले गया है, मैं अन्य स्त्रियो की भाँति नहीं हूँ मुझे मेरे पति नहीं समझ सकेंगे।

इसी बीच मेरी एक फुफिया सास देश के अपने भतीजे का समाचार लेने का आगई। हम दोनो उन्हे प्रणाम करके उठे ही थे कि उन्होने पहली बात यह कही—'सुनो, बहू! तुम तो भाग्य के दोष से दोनो नेत्रो को खो बैठी हो, अब हमारा अविनाश अन्धी स्त्री को लेकर गृहस्थी किस प्रकार चलायगा? उसे एक और ब्याह करने की स्वीकृति दे दो।' पति यदि मजाक मे कह देते—'ठीक तो है बुआ, तुम्ही लोग देख-सुनकर

एक सम्ब ध करा दो न'—तो सब झगड़ा ही समाप्त हो जाता। परन्तु उन्होंने कुंठित होकर कहा—अरी बुआ! क्या कहती हो।' बुआ ने उत्तर दिया—'क्यों अनुचित क्या कह रही हूँ? अच्छा बहू! तुम्ही ता बताओ बेटी। मैंने हँसकर कहा—बुआ! अच्छे आदमी से परामश चाहती हो। जिसकी गाँठ काटी जानी हो, उससे क्या कोई सम्मति लेता है। बुआ ने उत्तर दिया—'हाँ यह बात ठीक है। तो तुझसे मैं एकान्त म परामश करूँगी क्या कहता है अविनाश? फिर भी, एक बात है बहू! कुलीन घर की स्त्रियों की जितनी सौतें हों, उनके पति का गौरव उतना ही बढ़ता है। हमारा लड़का डाक्टरी न करके यदि विवाह करता रहता तो उसे रोजगार की चिन्ता ही क्या रहती। रोगी तो डाक्टर के हाथ मे पड़कर ही मरता है मरने पर फिर फीस भी नही देता परन्तु विधाता के शाप से कुलीन की स्त्री की मृत्यु नहीं होती और वह जितने दिन जीवित रहती है, उतने ही दिन पति को लाभ होता है।

दो दिन बाद मेरे पति ने मेरे सामने ही बुआ से जिज्ञासा की—'बुआ! आत्मीय जस व्यवहार द्वारा बहू की सहायता कर सके, ऐसी कोई अच्छे घर की लड़की तुम्हारी दृष्टि मे है? यह आँखों से देख नही सकती सदैव के लिए इसकी संगिनी बनकर कोई कर रहे ता मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।' जब शुरू शुरू म अंधी हुई थी उस समय यह बात कहना ठीक भी था परन्तु इस समय आखों के अभाव म मेरे अथवा गृहस्थी के सम्ब ध म क्या विशेष असुविधा है सो नहीं समझी परन्तु प्रतिवाद भी न करके चुप रह गई। बुआ ने कहा—कमी क्या है? मेरे ही जेठ की एक लड़की है जैसी सुन्दरी है वैसी ही लक्ष्मी भी। लड़की की आयु भी हो चुकी है, केवल उपयुक्त वर पाने की ही तलाश है। तुम्हारे जसे कुलीन को पाकर इसी समय विवाह कर देंगे। स्वामी ने चकित होकर कहा—'विवाह की बात कौन कह रहा है? बुआ ने

कहा—'अरे, विवाह किये बिना भले घर की लडकी क्या तुम्हारे घर म याही आकर पडी रहेगी। बात ता ठीक ही थी और पति उसका कोई उचित उत्तर नहीं दे पाये।

अपनी बन्द आंखो के अनन्त-अन्धकार के बीच म अकेली खडी हो मुँह उठाकर पुकारने लगी—'भगवान! मरे पति की रक्षा कीजिए!'

इसके कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे ही मरे पूजा आदि से निवृत्त होकर बाहर आते ही बुआ ने कहा—बहू! जिस जेठ की लडकी की बात कही थी, यही हमारी हेमांगिनी आज देश स आई है। हिमू! य हैं तुम्हारी दीदी, इन्हे प्रणाम करो।'

इसी समय मरे पति अचानक आकर, जसे अपरिचिता-स्त्री को देख कर लौट जाने को उद्यत हुए। बुआ ने कहा—'कहाँ जाता है अविनाश। पति ने पूछा—ये कौन है? बुआ न कहा—'यह लडकी हमारी वही जेठ की लडकी हमांगिनी है।' इसका कब आना हुआ, कौन लाया, क्या बात है—इन सबको लेकर—मेरे पति बारम्बार बहुत अनावश्यक आश्चय प्रकट करने लगे।

मैंने मन ही मन कहा—जो हो रहा है उसे तो सब समझती हूँ, परन्तु इसके ऊपर फिर छल छन्द क्यो आरम्भ किया जा रहा है? लुका छिपी, दाव ढाव सब झूठी बातें! अधम यदि करना ही है तो करो वह तो स्वय की अशान्त प्रवृत्ति के लिए है परन्तु मेरे लिए हीनता क्यो करते हो? मुझे भुलाने के लिए यह मिथ्याचरण किसलिए?

हमांगिनी का हाथ पकडकर मैं उसे अपने शयनगृह म ले गई। उसके मुख शरीर पर हाथ फिराकर उसे देखा, मुख सुन्दर होगा, आयु भी चौदह-पन्द्रह से कम नही होगी।

बालिका अचानक ही मधुर उच्च स्वर मे हँस उठी, बोली—'अरी क्या करती हो। मेरा भूत झाडे द रही हो क्या?'

उस उन्मुक्त सरल हास्य ध्वनि से मेरे भीतर का एक काला बादल जैसे एक क्षण के लिए फट गया। मैंने दाहिनी भुजा से उसके कण्ठ को लपटते हुए कहा— मैं तुम्हें देख रही हूँ, भाई। कहकर उसके कोमल मुख पर फिर एक बार हाथ फेरा।

'देख रही हो ?' कहकर वह फिर हँसने लगी, बोली—'मैं क्या तुम्हारे बगीचे की सेम या बैंगन हूँ जो हाथ फेर कर देख रही हो कि कितनी बडी हो गई।

उस समय अचानक मेरे मन को लगा, मैं जो अन्धी हूँ इसे हेमांगिनी नही जानती। कहा—'बहिन ! मैं अन्धी जो हूँ।' सुनकर वह कुछ देर तक चकित हो, गम्भीर बनी बैठी रही। मैं अच्छी तरह समझ गई अपने कौतूहली तरुण विशाल नेत्रों से उसने मेरे दृष्टिहीन नेत्र एवं मुँह के भावों को मनोयोगपूर्वक देखा, तदुपरांत कहा—'ओह ! तभी शायद चाची को यहाँ बुलवाया है ?

मैंने कहा—'नही मैंने नही बुलाया। तुम्हारी चाची स्वयं ही आई हैं।

बालिका फिर हँसती हुई बोली—'दया करके ? तब तो दयामयी शीघ्र पिण्ड नही छोड़ेगी ! परन्तु पिताजी ने मुझे इस जगह क्यो भेजा है।

इसी समय बुआ ने घर में प्रवेश किया। अब तक मेरे पति के साथ उनकी बातचीत चल रही थी। घर मे आते ही हेमांगिनी ने कहा—'चाची हम लोग घर कब लौटेंगे।

बुआ ने कहा— अरे, अभी आई और अभी चला चली। ऐसी चचल लडकी भी कही नही देखी।'

हेमांगिनी ने कहा— चाची ! तुम्हारा तो इस जगह से शीघ्र छुटकारा होता नही दीखता। खैर तुम्हारा तो यह आत्मीय घर है तुम जितने दिन चाहो रहो, परन्तु मैं चली जाऊँगी। यह तुमसे पहले ही

कहे देती हूँ।' यह कहकर मेरा हाथ पकडती हुई बोली—'क्या कहती हो, भाई ! तुम लोग तो हमारे ठीक सगे नही हो।' मैंने उसके इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, उसे अपनी छाती के पास खीच लिया। देखा, बुआ कितनी ही प्रबल न हो, इस कन्या को सँभालना उनके वश का नही है। बुआ ने प्रकट मे क्रोध न दिखाकर, हेमांगिनी का कुछ आदर करने की चेष्टा की, उसने उसे जैसे अपने शरीर से झाडकर फेंक दिया। बुआ सब बातो को लाडली लडकी के एक परिहास की भाति उडाकर हँसते हुए जाने को उद्यत हुई। फिर जाने क्या सोचा, लौटकर हेमांगिनी से बोली—'हिमू ! चल, तेरे स्नान का समय हो गया।' उसने मेरे पास आकर कहा—'हम दोनों घाट पर जाएँगी, क्या कहती हो भाई।' बुआ अनिच्छापूर्वक भी शांत रही, वे जानती थी, खीचतान करने पर हेमांगिनी की ही जीत होगी एव उन दोनो के बीच का विरोध अशोभन रूप मे मेरे सम्मुख प्रकट हो जायगा।

पिछले दरवाजे वाले घाट पर जाते जाते हेमांगिनी ने मुझसे पूछा—'तुम्हारे बाल बच्चे क्यो नही हैं ?' मैंने कुछ हँसकर कहा—'क्यो नही हैं, इसे किस प्रकार जानू, ईश्वर ने नही दिए।' हेमांगिनी बोली—'अवश्य ही तुम्हारे भीतर कुछ पाप होगा।' मैंने कहा—'उसे भी अन्तर्यामी ही जानते होंगे।' बालिका ने प्रमाणस्वरूप कहा—'देखा न, चाची के भीतर इतनी कुटिलता है कि उनके गर्भ से सन्तान का जन्म ही नही हो पाता।' पाप-पुण्य, सुख-दुःख, दण्ड-पुरस्कार का तत्व मैं स्वय भी नही जानती, बालिका को भी नही समझाया, केवल एक निःश्वास छोडकर मन ही मन उससे कहा—'तुम्ही जानो !' हेमांगिनी उसी समय मुझे कमकर पकडती हुई हँसकर बोली—'अरी, मेरी बात सुनते ही तुम निःश्वास छोडती हो। मेरी बात को भला कौन ग्रहण करता है ?'

देखा, पति के डाक्टरी व्यवसाय म व्याघात हान लगा। दूर से बुलावा आने पर तो जात ही नही, समीप भी कही जान पर झटपट लौट आते है। पहल जब काम के समय घर म रहत थे, मध्याह्न म भाजन तथा निद्रा के समय ही केवल घर के भीतर आत थे— जब बुआ भी जब-तब बुला भजती, वे भी बिना बात बुआ की खबर लन आ जात। बुआ जिस समय पुकार कर कहती— हिमू! मर पानदान को ता ले आ। म समझ लती कि बुआ के कमरे म मरे पति आए हुए है। पहल पहल दा-तीन दिन हेमागिनी पानदान, तल की शीशी सिन्दूर की डिबिया आदि लेकर जाती रही। परन्तु, उसके बाद पुकार होन पर वह किसी भी प्रकार न जाकर, महरी के हाथा सब चीजें भेजन लगी। बुआ पुकारती— हेमागिनी, हिमू हिम! बालिका जस मरे प्रति एक *करुणा के आवग स मुझ पकड बैठी रहती। एक आशका एव विषाद* उस घेरे रहता। इसके बाद स मेर पति की बाबत वह मेर समीप भूल से उल्लेख नहीं करना।

इसी बीच मेर दादा मुझ देखन को आए। मैं जानती थी, दादा की दृष्टि पनी है। व्यापार किस प्रकार चल रहा है इस उनके समीप छिपाना प्राय असाध्य हागा। मेर दादा बडे कठोर विचारक हैं। वे लशमात्र अ याय को भी क्षमा करना नही जानत। मर पति उन्ही के सम्मुख *अपराधी के रूप म खडे हागे इसी बात का मुझे सबसे अधिक* डर लग रहा था। मन अतिरिक्त प्रसन्नता द्वारा सबकुछ छिपा रक्खा। मैंने बहुत बातें कहकर बहुत उतावली दिखाकर अत्यन्त धमधाम करके चारा ओर जस एक धूलि उडाय रखन की चेष्टा की। परन्तु वह मरे पक्ष म ऐसी अस्वाभाविक थी कि उसी म और अधिक पकडे जान का कारण बन गया। परन्तु दादा अधिक दिना तक नही ठहर पाए मर पति एसी अस्थिरता प्रकट करन लग कि उसने प्रकट रूप म रूक्षता का आकार धारण कर लिया। दादा चल गये। विदा लेने स पूव परिपूर्ण

वाई वात नहीं कही। वह धीरे धीरे अपन शीतल हाथ का मेर ललाट पर फेरने लगी। इसी बीच किस समय मघगजन मूसलाधार वर्षा क साथ-साथ एक आधी चल गई कुछ जान ही नहीं सकी, बहुत देर बाद एक सुस्निग्ध शाति न आकर मर स्वरदाहदग्ध हृदय का ठण्डा कर दिया।

दूसरे दिन हमांगिनी न कहा—चाची ! तुम यदि घर नहा चलती हो तो मैं अपन कवन दादा के साथ जाती हूँ, उन्ह बुला रक्खा है। बुआ न कहा— उसका क्या काम है, मैं भी कल जा रही हूँ, एक साथ चलना होगा। यह देख, हिमू ! हमार अविनाश न तर लिए कैसी एक मानी जडी अँगूठी खरीद दी है। कहकर गव सहित बुआ ने अँगूठी को हमांगिनी क हाथ म दिया। हमांगिनी न कहा—यह देखा चाची, मैं कैसा सुन्दर निशाना लगा सकती हूँ। कह कर, खिडकी स ताककर, अँगूठी का पाछे की पोखर म फक दिया। बुआ क्रोध, दुख और आश्चय से रोमाचित हो उठी। मेरा वारम्वार हाथ पकडती हुई कह उठो—'बहू ! इस लडकपन की बात को अविनाश से बिल्कुल मत कहना, अयथा मरा लडका इसस अपन मन म बहुत दुखी होगा। सागध खाओ बहू ?' मैंन कहा—'अधिक कहन की आवश्यकता नहीं है बुआ, मैं कोई भी बात नहीं कहूँगी।'

दूसरे दिन यात्रा स पहले हमांगिनी मुझस लिपटती हुई बोली—दीदी, मुझे याद रखना।' मैंन दोनो हाथा को उसके मुह पर वारम्वार फिराते हुए कहा—अधा कुछ भूलता नहीं, बहिन ! मेरी कोई दुनियाँ नहीं है मैं केवल मन ही लिए हुए हूँ। कहकर उसके मस्तक को एक बार सूँघकर चुम्बन किया। झर-झर करते हुए, उसकी केशराशि क बीच मेरे आसू झर पडे।

हमांगिनी के विदा लते ही मेरी पृथ्वी शुष्क हो गई। वह मेरे प्राणो के बीच जिस सुगध सौदय सगीत, जिस उज्ज्वल प्रकाश एव

जिस कोमल तारुण्य को लाई थी, वह चला गया। एक बार अपने समस्त ससार, अपने चारो ओर, दोनो हाथ बढाकर देखा कहा पर मेरा क्या है ? मेरे पति ने आकर विशेष प्रसन्नता दिखाते हुए कहा- 'य चली गइ, अब बच गए, कुछ काम काज करने का अवसर मिल सकेगा।' धिक्कार, धिक्कार है मुझे। मेर लिए इतनी चतुराइ क्यो ? मैं क्या सत्य से डरती हूँ ? मैंने क्या चोट से कभी भी भय किया है ? मेर पति क्या जानत नही है ? जिस समय मैंने दोना नेत्र दिए थे, उस समय मैंने क्या शांत मन से अपन चिर अ धकार को ग्रहण नही किया था ?

इतने दिन मेरे एव मेरे पति के बीच केवल अ धता का अन्तराल (परदा) था, आज से एक और व्यवधान पैदा हो गया। मर पति भूलकर भी कभी हेमांगिनी के नाम का मेर समीप उच्चारण नही करते, जैसे उनके सम्पक वाल ससार से हेमांगिनी सदा क लिए लुप्त हो गई हो जैसे उस स्थान पर उन्होन किसी भी समय लेशमात्र भी रेखा तक न खीची हो। या पत्र द्वारा वे सदैव ही उसकी खबर पात रहत हैं, इसे मैं अनायास ही अनुभव कर लेती हूँ जैसे पोखर मे बाहरी पानी जिस दिन थोडा भी प्रवेश करता है, उसी दिन कमल के डठल म खिचाव पडने लगता है, उसी प्रकार उनके भीतर जरा भी जिस दिन बाढ का सचार होता, उसी दिन अपने हृदय की मृणाल के बीच मे स्वय ही अनुभव कर लेती। कब वे खबर पाते है और कब नही पाते, यह मरे समीप कुछ छिपा नही था। परन्तु मै भी उन्हें उसकी याद नही दिला पाती थी। मेरे अँधेरे म वह जो उन्मत्त उद्दाम, उज्ज्वल, सुन्दर नक्षत्र क्षण भर के लिए उदय हुआ था, उसका कुछ समाचार पाने एव उसकी थोडी सी चर्चा करने के लिए मेरे प्राण प्यासे बन रहते, परन्तु अपने स्वामी के समीप क्षणभर के लिए भी उसका नाम लेने का अधिकार नही था। हम दोना लोगो के बीच वाक्य एव वेदना से परिपूण यह एक नीरवता निश्चल भाव से विराज रही थी।

वैशाख मास के बीचाबीच एक दिन महरी ने आकर मुझसे पूछा—'बहूजी ! घाट पर जो बडी सजावट के साथ नौका तय्यार की जा रही है, सो बाबूजी कहाँ जा रहे हैं ?' मैं जानती थी, क्या कुछ तयारियाँ हो रही हैं मेरे अदृष्ट-आकाश मे पहले कुछ दिन आँधी आने से पूर्व की निस्तब्धता एव उसके पश्चात् प्रलय के छिन्न विछिन्न मेघ आकर जम रहे थे। सहारकारी शकर नीरव उँगली के इशारे से अपनी सम्पूर्ण प्रलयशक्ति को मेरे मस्तक के ऊपर एकत्र कर रहे थे, उसे मैं खूब समझ भी रही थी। महरी से कहा—'कहाँ, मैंने तो इस समय तक कोई खबर नही पाई।' महरी और किसी प्रश्न को पूछने का साहस न करके नि श्वास छोडती हुई चली गई।

बडी रात गये मेरे पति ने आकर कहा—'दूर एक जगह से मेरा बुलावा आया है, कल सबेरे ही मुझे रवाना होना पडेगा। समझता हूँ, लौटने म दो दिन की देर हो जायेगी।'

मैंने शय्या से उठकर खडे होते हुए कहा—'क्या मुझसे झूठ बोल रहे हो ?

मेरे पति ने कम्पित अस्फुट कण्ठ से कहाँ—'झूठ क्या बोला ?'

मैंने कहा—'तुम विवाह करने जा रहे हो।

वे चुप रह गये। मैं भी स्थिर होकर खडी रही। कुछ देर तक घर में सन्नाटा रहा। अन्त म मैं ही बोली—कोई उत्तर दो। बोलो—'हाँ मैं विवाह करने जा रहा हूँ।

उन्होने प्रतिध्वनि के समान उत्तर दिया—'हाँ, मैं विवाह करने जा रहा हूँ।'

मैंने कहा—नही तुम नही जा सकोगे। तुम्हारी इस महा विपत्ति, महापाप से रक्षा करूँगी। यदि यह नही कर सकी तो मैं तुम्हारी स्त्री कैसी किसलिए मैंने शिवजी की पूजा की है ?

फिर बहुत देर तक घर में सन्नाटा रहा। मैंने पृथ्वी पर गिरकर

पति के चरणों को पकड़कर कहा—मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है, दूसरी स्त्री की तुम्हे क्या आवश्यकता है। शपथ खाओ सच बात कहो।'

तब मेरे पति ने धीरे धीरे कहा—सच ही कहता हूँ मैं तुमसे डरता हूँ। तुम्हारी अंधता ने तुम्हें एक अनन्त आवरण से आवृत्त कर, रक्खा है, वहाँ मेरे प्रवेश करने की जगह नहीं है। तुम मेरी देवी हो तुम्ही मेरे देवता की तरह भयानक हो, तुम्हे लेकर प्रतिदिन गृहकार्य नहीं कर सकता। जिससे बकूँ-झकूँ, क्रोध करूँ गहने गढ़ा कर दूँ, ऐसी एक सामान्य रमणी मैं चाहता हूँ।'

मेरी छाती के भीतर चीरकर देखा। मैं सामान्य रमणी हूँ, मैं मन के भीतर एक नव विवाहिता—बालिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ, मैं विश्वास करना चाहती हूँ, भरोसा करना चाहती हूँ, पूजा करना चाहती हूँ, तुम अपमान करके मुझे दुसह दुख देकर अपनी अपेक्षा मुझे बड़ा मत बनाओ—मुझे सब बातों में अपने पाँवों के नीचे रक्खो।'

मैंने क्या-क्या बातें कहीं, सो क्या मुझे याद है? क्षुब्ध-समुद्र क्या अपनी गर्जन स्वयं ही सुन सकता है? केवल याद आता है, मैंने कहा था—यदि मैं सती होऊँ तो भगवान साक्षी रहे, तुम किसी भी प्रकार अपनी धर्म की शपथ को तोड नहीं सकोगे। उस महापाप के पहले ही मैं विधवा हो जाऊँगी या हेमांगिनी ही नहीं बच सकेगी।' यह कहकर मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

जब मेरी मूर्च्छा भंग हुई तब भी रात्रि की समाप्ति पर पक्षियों ने चहचहाना आरम्भ नहीं किया था एवं मेरे पति चले गये थे।

मैं ठाकुरद्वारे का दरवाजा बन्द कर, पूजा पर बैठ गई। सारे दिन मैं घर से बाहर नहीं निकली। सन्ध्या के समय काल-बशाखी आँधी से दालान काँपने लगा। मैं नहीं बोली कि 'हे भगवान्! मेरे पति इस

समय नदी मे हैं, उनकी रक्षा करो।' मैं केवल एकान्त मन से कहन लगी—'हे ईश्वर ! मेरा अदृष्ट जो होना हो, सो हो, परन्तु मेरे पति को महापाप से मुक्त करो। सम्पूण रात्रि बीत गई। उसके दूसरे दिन भी आसन का परित्याग नही किया। इस अनिद्रा और अनाहार के लिए मुझे किसने बल दिया, नही जानती मैं पाषाणमूर्ति के सम्मुख पाषाण मूर्ति की भाँति ही बठी रही।

सध्या के समय बाहर से दरवाजे की ठेलाठेली आरम्भ हुई। द्वार तोडकर जब घर मे लोगो ने प्रवेश किया, उस समय मैं मूर्च्छित होकर पडी थी।

मूर्च्छा भग होन पर सुना—'दीदी।' हेमांगिनी की गोद मे साई हूँ। मस्तक झुकाते ही उसकी नवीन चोली खस-खस् कर उठी। हा भगवान ! मेरी प्राथना नही सुनी। मेरे स्वामी का पतन हो गया।

हमागिनी ने मस्तक नीचे झुकाकर धीरे धीरे कहा—'दीदी ! तुम्हारा आशीर्वाद लेने आई हूँ।'

पहले एक क्षण काठ जैसी होकर दूसरे ही क्षण उठकर बैठ गई, कहा—आशीर्वाद क्यो नही दूँगी बहिन ! तुम्हारा क्या अपराध है ?'

हेमांगिनी अपने सुमधुर उच्च कण्ठ से हँस उठी, बोली—'अपराध ! तुम्हारे ब्याह करने पर अपराध नही होता और मेरे करन पर अपराध ?

हेमांगिनी को पकडकर चिपटाती हुई मैं भी हँसी। मन-ही मन कहा—ससार म मेरी प्राथना ही क्या सबसे अंतिम है ? उसकी इच्छा क्या कुछ भी नही ? जो चोट पडी है, वह मेरे मस्तक के ऊपर ही पडे, हृदय के बीच जहाँ मेरा धम विश्वास है वहा नही पडने दूँगी। मैं जसी थी, वैसी रहूँगी। हेमांगिनी न मेरे चरणा के समीप झुककर मेरे चरणो की धूलि ली। मैंने कहा—'तुम चिर सौभाग्यवती, चिर-सुखी होओ।

हेमांगिनी ने कहा—'केवल आशीर्वाद नहीं, तुम सती हो, तुम्हें अपने हाथ से मुझे एवं अपने बहनोई को वरण कर लेना होगा। तुम उनसे लज्जा करोगी तो काम नहीं चलेगा। यदि आज्ञा दो तो उन्हें अन्तःपुर में ले आऊँ।'

मैंने कहा—'लाओ।'

कुछ क्षण पश्चात् मेरे घर में नई पदचाप ने प्रवेश किया। स्नेह-युक्त प्रश्न सुना—'अच्छी हो, कुमु?'

मैंने उतावली के साथ बिछौने से उठकर पाँवों के समीप प्रणाम करते हुए कहा—'दादा!'

हेमांगिनी ने कहा—'दादा किसके? कान मल दो वे तुम्हारे छोटे बहनोई हैं।'

तब सब कुछ समझ में आया। मैं जानती थी दादा की प्रतिज्ञा थी कि वे विवाह नहीं करेंगे। माँ नहीं थी, उनसे अनुनय करके विवाह कराने वाला कोई नहीं था। इस बार मैंने ही उनका ब्याह कराया। दोनों नेत्रों से आँसुओं की घोर वर्षा होने लगी। किसी प्रकार रोक नहीं पाई। दादा धीरे धीरे मेरे केशों के भीतर हाथ फिराने लगे, हेमांगिनी मुझे कसकर पकड़े हुए केवल हँसने लगी।

रात को नींद नहीं आ रही थी मैं उत्कण्ठित हृदय से पति के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी।

लज्जा एवं नैराश्य को वे किस प्रकार से सम्वरण करेंगे, इसे मैं स्थिर नहीं कर पा रही थी।

बहुत रात गये धीरे से द्वार खुला। मैं चौंककर उठ बैठी। मेरे पति की पदचाप थी। छाती के भीतर हृत्पिण्ड पछाड़ खाने लगा।

उन्होंने बिछौने पर आकर मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा—'तुम्हारे दादा ने मेरी रक्षा की है। मैं क्षणभर के मोह में पड़कर मरने जा रहा था। उस दिन मैं जब नौका में बैठा तो मेरी छाती पर कौनसा पत्थर चिपका हुआ था, इसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। जब नदी के

बीच मे जोर की आँधी आई उस समय प्राणो का भय भी लग रहा था, उसके साथ ही सोच रहा था, यदि डूब जाऊँ तो उसस भी मरा उद्धार होगा। माथुरगज मे पहुँचते ही सुना, उसके पहले दिन ही तुम्हारे दादा से हेमांगिनी का विवाह हो गया है। किस लज्जा और किस आनन्द से नौका पार लौटा, उसे कह नही सकता। इन्ही कुछ दिनो म मैं खूब समझ गया हूँ, तुम्हे छोडकर मुझे कोई सुख नही है। तुम मेरी देवी हो।'

मैंने हँसकर कहा—'नही, मुझे तुम्हारी देवी होन की जरूरत नही है, मैं तुम्हारे घर की गृहिणी हूँ, मैं केवल सामान्य नारी हूँ।'

पति ने कहा—'मेरा भी एक अनुराध तुम्हे रखना होगा। मुझे फिर देवता कहकर कभी भी अप्रतिभ मत करना।'

दूसरे दिन मगलध्वनि और शखध्वनि से मुहल्ला गूँज उठा। हेमांगिनी मेरे पति का भोजन के समय, बठते समय, सवेरे रात म अनेक प्रकार से मजाक उडाने लगी, परेशानी की कोई सीमा नही रही, परन्तु वे कहाँ गए थे, क्या घटना घटी थी, किसी ने भी इसका लशमात्र उल्लेख नही किया।

माल्यदान

प्रात काल सर्दी-सी थी। दोपहर के समय वायु ने कुछ थाडा गम होकर दक्षिण दिशा की ओर से बहना आरम्भ कर दिया।

यतीन जिस बरामदे मे बैठा था, वहाँ से लेकर बगीचे के एक कोने मे एक ओर एक कटहल और दूसरी ओर शिरीष वृक्ष के बीच मे होकर बाहर का मदान दिखाई देता है। वह सूना मैदान फागुन की धूप मे धू धू कर रहा है। उसी के एक कोने मे होकर भरी रीती बैलगाडिया धीरे धीरे गाँव की आर लौट रही हैं गाडीवान मस्तक पर गमछा (अँगौछा) डाले अत्यन्त बेकार भाव से गाना गा रहे हैं।

इसी समय पीछे मे एक सहास्य नारीकण्ठ बोल उठा, 'क्यो यतीन, पूवजन्म की किसी बात को सोच रहे हो शायद ?'

यतीन ने कहा--'क्यो पटल, क्या ऐसा ही अभागा हूँ कि सोचने लगते ही पूवजन्म की खीचतान करनी पडेगी।'

आत्मीय समाज म पटल' नाम से प्रसिद्ध यह स्त्री बोल उठी, 'और झूठी बढाई नही करनी होगी। तुम्हारे इस जन्म की सभी खबरो को तो रखती हूँ महाशय। छि छि इतनी आयु हो गई तो भी एक साधारण बहू भी घर म नही ला सके। हमारा जो यह धना माली है, उसकी भी एक बहू है—उसके साथ दोना वक्त झगडा कर वह मुहल्ले के सभी लागो को जता देता है कि उसके बहू है। और तुम जो आकाश की ओर देखकर अनुभव करते हो, जसे किसी के चन्द्रमुख का ध्यान किए बैठे हो यह सब चालाकी मैं क्या समझती नही—वह केवल लोक-दिखावे का ढोग मात्र है। देखो यतीन परिचित ब्राह्मण को जनेऊ दिखाने की आवश्यकता नही होती। हमारा यह धना तो किसी भी दिन विरह का बहाना बनाकर आकाश की ओर इस तरह देखता हुआ नही बैठा रहता बहुत बडे विच्छेद के दिना मे भी वक्षो के नीचे खुरपी हाथ मे लिए उस दिन काटते हुए देखा है, परन्तु उसकी आखो मे तो ऐसे विभोर भाव देखे नही। और तुम, महाशय, सात जन्म बहू का मुँह नही देखा—केवल अस्पताल मे लाशें चीरते हुए और पढाई कण्ठस्थ करते हुए ही आयु पार करदी, तुम इस प्रकार दोपहर के समय आकाश की ओर गद्‌गद् होकर देखते हुए क्यो बैठे हो ? न, यह सब फालतू चालाकी मुझे अच्छी नही लगती। मेरा शरीर जल उठता है।'

यतीन हाथ जोडकर बोला— ठहरो ठहरो और नही। मुझे और लज्जित न करो। तुम्हारा धना ही धन्य है। उसी के आदश पर मैं चलने की चेष्टा करूँगा। और बात नही, कल सवेरे ही उठकर जिस लकडहारे की लडकी का मुँह देखूगा, उसी के गले मे माला डाल दूँगा —धिक्कार मुझसे और नही सहा जा सकेगा।

पटल—'तब यही बात रही ?'

यतीन—'हाँ, रही।'

पटल—'तब आओ।'

यतीन—'कहाँ जाएँगे ?

पटल— आओ तो सही।'

यतीन—'नहीं, नहीं, कोई एक शरारत तुम्हारे दिमाग में आई है। मैं इस समय हिलूँगा भी नहीं।'

पटल—'अच्छा, तब यहीं पर बैठो।' कहकर उसने शीघ्रता से प्रस्थान किया।

परिचय दे दिया जाए। यतीन एवं पटल की आयु में केवल एक दिन का तारतम्य (घट-बढ़) है। पटल को यतीन की अपेक्षा एक दिन बड़ी कहने से यतीन उसके प्रति किसी प्रकार का सामाजिक सम्मान दिखाने को तैयार नहीं। दोनों ही चाचा ताऊ की सन्तान भाई बहिन हैं। बराबर एक साथ खेलते आ रहे हैं। 'दीदी' नहीं कहता, कहकर पटल ने यतीन के नाम बचपन में अपने चाचा के निकट अनेकों नालिशें की, परन्तु किसी भी शासन विधि द्वारा कोई फल नहीं मिला-एकमात्र छोटे भाई के निकट भी उसका 'पटल' नाम नहीं पलटा जा सका।

पटल खूब मोटी ताजी गाल-मटोल प्रफुल्लता के रस से परिपूर्ण है। उसके कौतुकहास्य का दमन कर सके, समाज में ऐसी कोई शक्ति नहीं था। सास के समीप भी वह किसी भी दिन गम्भीरता का अवलम्बन नहीं कर पाती। पहले-पहल तो उसे लेकर अनको बातें उठी थी। परन्तु अन्त में सभी को हार मानकर कहना पड़ा—वह ऐसी ही है। तदुपरान्त ऐसा हुआ कि, पटल की दुर्निवार प्रफुल्लता के आघात से गुरुजनों का गम्भीर्य धूलिसात् हो गया। पटल अपने आस-पास कहीं भी मन की उदासी, चेहरे की उदासी अथवा दुश्चिन्ता का नहीं सह सकती थी—अजस्र गल्प-हँसी मजाक से उसके चारो ओर की वायु जैसे विद्युत शक्ति से भारी बनी रहती थी।

पटल के पति हरकुमारबाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट ने विहार-प्रान्त से बदल कर कलकत्ता के आबकारी विभाग में स्थान प्राप्त किया था। प्लेग

के भय से एक बगान बाडी[1] किराये पर लेकर रहन थे वहीं स कलकत्ते क लिए यातायात करते हैं। आबकारी-परिदशन (जाँच आदि) के लिए प्राय हो उन्ह मफस्सल (बाहर) घूमना पडेगा, यह सोचकर व दश (गाँव) से माँ और अन्य दो एक आत्मीय जनो को ले आन का उप क्रम (विचार) कर रहे थे, इसी बीच डाक्टरी म नवीन उत्तीण, प्रसार प्रतिपत्तिहीन (यश और प्रतिष्ठा से हीन) यतीन वहिन के निम न्त्रण पर कुछ सप्ताहा के लिए यहाँ आया है।

कलकत्ते की गली म होकर पहले दिन पड पौधा के बीच आकर यतीन छायामय निजन बरामदे म फाल्गुन मास के मध्याह्नकालीन रसालस्य से आविष्ट हाकर बठा हुआ था, इसी समय पूवकथित वही उपद्रव आरम्भ हुआ। पटल के चल जाने पर फिर क्षण भर के लिए वह निश्चिन्त होकर कुछ हिल डुलकर अधिक आराम से बठ गया—लक्ड हारे की लकडी के प्रसग मे बचपन के समय की रूप-कथा क गली-कूचा मे उसका मन घूम घूम कर सैर करने लगा।

इसी समय फिर पटल स हास्यमय कण्ठ की काकली स वह चौंक उठा।

पटल एक अन्य लडकी का हाथ पकडकर जोर से खीचती हुई ले आई [और उसे यतीन के सामने उपस्थित करते हुए बोली—'ओ लकडहारे की लडकी !'

लडकी ने कहा— क्या है, दीदी ?

पटल— मेरा यह भाई कसा है, देख तो सही।'

लडकी निसकोच यतीन को देखने लगी। पटल ने कहा— कैसा है, अच्छा नही है देखने मे ?

---

१ वह मकान जो शहर से दूर किसी बगीचे के भीतर बना हुआ हो।

लडकी ने गम्भीर भाव स विचारकर, गदन हिलाते हुए कहा, अच्छा है ।'

यतीन लाल हो चौकी छोडकर उठत हुए बोला—अरी पटल लडकपन कर रही हो ।'

पटल—मैं वचपना नही कर रही, तुम्ही वडा वूढापन कर रह हा। ा है तुम्हारी आयु के पेड पत्थर भी नही हैं ।'

यतीन भाग गया । पटल ने उमके पीछे पीछे दौडत दौडते , 'ओ यतीन, तुम डरो मत ! डरा मत ! इसी समय तुम्हें माला पहनानी होगी—फाल्गुन चैत मे लग्न नही है—अब भी हाथ मे ा है ।'

पटल ने जिमे लकडहारे की बेटी कहकर पुकारा था, वह ी अवाक रह गई । उसकी आयु सोलह वष की होगी शरीर छर —मुख के सौन्दय के सम्बन्ध मे अधिक कुछ नहो कहना, केवल पर यही एक असमा यता है कि उसे देखकर वन की हरणी का मन म आ जाता है । कठोर भापा मे उसे निबु द्धि भी कहा जा ता है परन्तु वह बेवकूफ नही है, वह बुद्धिवृत्ति का अपरिस्फुरणमात्र उसने लकडहारिन के मुख का सौन्दय नष्ट नही किया, अपितु एक शिष्टता प्रदान की है ।

सन्ध्या के समय हरकुमारबाबू ने कलकत्ते से लौट आकर यतीन देखते हुए कहा अरे यतीन आ गए, अच्छा ही हुआ । तुम्ह डाक्टरी करनी होगी । पश्चिम मे रहते हुए दुर्भिक्ष के समय हमने लडकी को लेकर पाला था—पटल उसे 'लकडहारिन' कहकर रती है । इसके माँ-बाप और यह लडकी हमारे बँगले के पास एक के नीचे पडे हुए थे । जब खबर पाकर गये तो देखा, उसके माँ-बाप गय हैं लडकी मे कुछ प्राण शेष हैं । पटल न उस अनेको यत्ना से ा लिया उसकी जाति की बावत कोई नही जानता—उसे लेकर

किसी के आपत्ति करते हीपटल कहती है वह तो द्विज है, एक बार मर कर फिर हमारे घर म जन्मी है उसकी पिछली जाति तो कभी की समाप्त हो गई।' पहले पहल लडकी ने पटल को माँ कहकर पुकारना आरम्भ किया, पटल न उसे धमकाते हुए कहा 'खबरदार मुझसे माँ मत कहना—मुझसे दीदी कहो।' पटल कहती है, 'इतनी बडी लडकी के माँ कहने पर मैं स्वय को बडी बूढी अनुभव करने लगती हूँ।' जान पडता है, उसी दुर्भिक्ष के उपवास अथवा किसी अन्य कारण स उस रह-रहकर शूलवेदना जैसी होती है। बात क्या है तुम्ह अच्छी तरह परीक्षा करके देखनी पडेगी। अरे तुलसी, लकडहारिन को बुलाकर तो ले आ।

लकडहारिन केश बाँधती-बाधती असम्पूण वेणी का पीठ के ऊपर हिलाती हुई हरकुमार बाबू के कमरे म आ उपस्थित हुई। अपन हरिणी जैसे दोनो नेत्रा को उन दोनो व्यक्तिया के ऊपर ठहराकर वह देखने लगी।

यतीन को बगलें झाकते हुए देखकर हरकुमार ने उसस कहा—'व्यथ सङ्कोच करते हो यतीन। यह देखने मे तो बडी तन्दरुस्त लगती है परन्तु कच्चे नारियल के समान इसके भीतर कवल पानी ही छलछला रहा है—अब तक गरी की एक रेखा (पर्त) भी नही दिखाई देती। यह कुछ भी नही समझती--इसे तुम नारी समझ भ्रम मत करना यह वन की हरिणी है।

यतीन अपने डाक्टरी कतव्य का साधन करने लगा—लकड-हारिन ने तनिक भी सकोच प्रकट नही किया। यतीन ने कहा, 'शरीर-यन्त्र का कोई विकार नही समझ म आ सका।'

पटल झट से कमरे म घुसती हुई बोली—हृदय-यन्त्र म भी कोई विकार नही हुआ। उसकी परीक्षा करके देखना चाहत हा ?

कहकर लकडहारिन के पास जा उसकी ठोडी छूती हुई बोली 'आ लकडहारिन, मेरा यह भाई तुझे पसन्द आया है ?

लकडहारिन ने सिर हिलाकर कहा, 'हा ।'

पटल न कहा, 'मेरे भाई से तू विवाह करेगी ?'

उसने फिर मस्तक हिलाकर कहा—'हाँ ।'

पटल और हरकुमार बाबू हँस उठे। लकडहारिन हँसी का मम न समझकर, उनके अनुकरण मे हँसती हुई खिल उठी।

यतीन आरक्त हो, उठकर व्यस्त होता हुआ बोला 'आह पटल, तुम ज्यादती करती हो—भारी अन्याय। हरकुमार बाबू, आपने पटल को बहुत अधिक प्रश्रय (छूट) दे रखा है।'

हरकुमार ने कहा—ऐसा न होने पर मैं भी उससे प्रश्रय पाने की प्रत्याशा नही कर सकता। परन्तु यतीन, लकडहारिन को न जानने के कारण ही तुम इतने व्यग्र हो रहे हो। तुम लज्जा करके लकडहारिन को भी लज्जा करना सिखा दोगे, ऐसा दिखाई देता है। उस ज्ञान वृक्ष का फल तुम मत खिला देना। सभी उसे लेकर कौतुक करते हैं—तुम यदि बीच मे पडकर गाम्भीर्य दिखाओगे तो वह उसके लिए एक असङ्गत व्यापार होगा।'

पटल—'इसीलिए तो यतीन के साथ मेरी आज तक नही बनी, बचपन से ही केवल झगडा चलता रहा है—वह बडा गम्भीर है।'

हरकुमार—'झगडा करने का तो शायद इस तरह से एकदम अभ्यास हो गया है—भाई तो भाग गया, अब ।'

पटल—'फिर झूठी बात ! तुम्हारे साथ झगडा करने मे सुख नही है—मैं चेष्टा भी नही करती।'

हरकुमार—मैं शुरू म ही हार मान लेता हूँ।'

पटल—'बडा काम करते हो। शुरू मे हार न मानकर अन्त मे हार मानने पर कितनी खुश होती !'

रात्रि मे शयन गृह के खिडकी-दरवाजे खोलकर यतीन अनेक बातें सोचता रहा। जिस लडकी ने अपने माँ बाप को खाना न मिलने पर

मरत हुए देखा है, उसके जीवन के ऊपर कैसी भीषण छाया पड़ी है। इस निष्करुण व्यापार (घोर कष्ट) में वह कितनी बड़ी हो गई है—उसे लेकर क्या हँसी मजाक किया जाय। विधाता ने क्या करके उसकी बुद्धि वृत्ति के ऊपर एक आवरण डाल दिया है—यह आवरण यदि उठ जाय तब अदृष्ट की रौद्र-लीला का कैसा भीषण चिह्न प्रकट हो उठेगा। आज मध्याह्नकाल में वृक्षों की मेंध से यतीन जिस समय फाल्गुन के आकाश को देख रहा था, दूर से कटहल के पुष्पों की गन्ध मृदुतर होती हुई उसकी नासिका को आविष्ट किए ले रही थी उस समय उसके मन ने माधुर्य के कुहासे से समस्त जगत् को आच्छन्न करके देखा था, इस बुद्धिहीन बालिका ने अपने हरिणी जैसे दोनों नेत्रों द्वारा उस स्वर्णिम कुहास को हटा लिया है फाल्गुन मास के इस कूजन-गुंजन ममर के पश्चात् जो संसार क्षुधा-तृषातुर दुःख में व्याकुल शरीर लिए विराट रूप में खड़ा हुआ था, उद्घटित यवनिका के शिल्पमाधुर्य के अंतराल में वह दिखाई देने लगा।

दूसरे दिन सन्ध्या के समय लकड़हारिन को उसी वेदना (दर्द) ने पकड़ लिया। पटल ने झटपट यतीन को बुला भेजा। यतीन ने आकर देखा कष्ट लकड़हारिन के हाथ-पावों को ऐंठ रहा है शरीर ठिठुर गया है। यतीन ने औषधि लाने को भेजकर बोतल में भरकर गरम पानी लाने का हुक्म दिया। पटल ने कहा—'बड़े भारी डाक्टर हो गये, पावों में कुछ गरम तेल की मालिश कर दो न। नहीं देखते पाँव के तलुए बर्फ जैसे हो गए हैं।

यतीन रागिणी के पाँवों के तलुओं में गरम तेल की जल्दी जल्दी मालिश करने लगा। चिकित्सा-क्रम में बहुत रात बीत गई। हरकुमार कलकत्ते से लौट आकर बार-बार लकड़हारिन की खबर लेने लगे। यतीन ने समझाया साय काल में काम से लौट आने के बाद पटल के अभाव में हरकुमार की अवस्था चंचल हो उठी है क्षण-क्षण पर लकड़-

हारिन की खबर लेने का तात्पर्य वही है। यतीन ने कहा हरकुमार-बाबू जल्दबाजी कर रहे हैं, तुम जाओ पटल।

पटल ने कहा—'दूसरों की दुहाई तो दोगे ही। जल्दबाजी क्या कर रहे हैं, उसे समझती हूँ। मेरे जान पर ही तुम बचोगे (चैन की साँस लोगे) इस ओर तो बात-बात में लज्जा से मुँह और आँखें लाल हो जाती हैं—तुम्हारे पेट में जो इतना कुछ था उसे कौन समझेगा।'

यतीन—'अच्छा दुहाई है तुम्हारी, तुम यहीं रहो। रक्षा करो—तुम्हारा मुँह बन्द होने पर ही बचूँगा। मैंने गलत समझा था—हरकुमार बाबू जान पड़ता है शान्तिपूर्वक है, ऐसा सुयोग उन्हें सदैव नहीं मिलता।'

लकड़हारिन ने आराम पाकर जब आँखें खोलीं, पटल ने कहा—तेरी आँखें खुलवाने के लिए तेरा वर जो आज बहुत देर तक तेरे पाँव पकड़कर सहला रहा था—आज शायद इसीलिए इतनी देर कर दी। छी, छी, उसके पाँव की धूलि ले।

लकड़हारिन ने कर्तव्य जानकर उसी समय यतीन के पाँवों की धूलि ली। यतीन शीघ्रतापूर्वक घर से बाहर चला गया।

उसके दूसरे दिन यतीन के ऊपर योजनानुसार उपद्रव आरम्भ हुए। यतीन खाने बैठा था, इसी समय लकड़हारिन आकर अम्लानमुख से पंखा ले उसकी मक्खियाँ उड़ाने में प्रवृत्त हो गई। यतीन घबराकर कह उठा, 'ठहरो, ठहरो, जरूरत नहीं है।' लकड़हारिन ने इस निषेध से चकित हो, मुँह फिराकर पीछे वाले कमरे की ओर एक बार देखना चाहा—तदुपरान्त फिर पंखा झलने लगी। यतीन अन्तरालवर्तिनी को सम्बोधित करते हुए कह उठा, 'पटल, तुम यदि इस तरह मुझे जलाओगी तो मैं नहीं खाऊँगा—मैं यह उठ पड़ा।'

कहकर उठने का उपक्रम करते ही लकड़हारिन ने पंखा फेंक दिया। यतीन ने बालिका के बुद्धिहीन मुख पर तीव्र वेदना की रेखा

दिखाई दी, उसी क्षण अनुतप्त होकर वह दुबारा बठ गया। लकडहारिन जसे कुछ समझती नही वह जैसे लज्जित नही होती, वदना अनुभव नही करती इस बात पर यतीन ने भी विश्वास करना आरम्भ कर दिया। आज आश्चय के बीच देखा, सभी नियमा का व्यतिक्रम है एव व्यतिक्रम कब हटात् घटेगा, इस पहले से काई नही कह सकता। लकडहारिन पखा फेंककर चली गई।

दूसरे दिन सवेर यतीन बरामदे म बैठा था, वृक्ष के पत्ता म कोयल न अत्यत करुण पुकार आरम्भ कर दी, आम के बौर की गध से वायु भाराक्रान्त थी—इसी समय उसने देखा, लकडहारिन चाय का प्याला हाथ म लिए जसे कुछ बगलें झाक रही है। उसके हरिणी जैस नत्रो म एक सकरुण भय था—उसके चाय ले जाने पर यतीन विरक्त हागा या नही इसे जैसे वह समझ नही पा रही थी। यतीन न व्यथित हो, उठ कर, आगे बढकर उसके हाथ से प्याला ले लिया। इस मनुष्य जन्मधारी मृग शावक को तुच्छ कारण से क्यो वेदना दी जाय। यतीन न ज्योही प्याला लिया, त्योही देखा, बरामदे के दूसरे भाग म पटल ने अचानक आविभू त हाकर नि शब्द हास्य स यतीन को मुक्का दिखाया, भाव यह था कि म से पकडे गये।

उसी दिन सध्या के समय यतीन एक डाक्टरी का कागज पढ रहा था, तभी फूला की गध से चकित होकर देखा, लकडहारिन न मौलश्री के पुष्पो की माला हाथ मे लिए हुए कमरे क भीतर प्रवेश किया। यतीन ने मन ही मन कहा, 'बहुत ही ज्यादती हो रही है—पटल के इस निष्ठुर हास्य को और अधिक आश्रय देना उचित नही होगा।'

लकडहारिन से कहा—छि छि, लकडहारिन, तुम्हे लेकर तुम्हारी दीदी हँसी करती है तुम समझ नही पाती।'

बात समाप्त करते-न-करते लकडहारिन ने त्रस्त सकुचित भाव से प्रस्थान करने का उपक्रम किया। यतीन ने तब झटपट उसे पुकारते

हुए कहा, 'लकडहारिन ! देखूँ, तुम्हारा माला देखूँ।' कहकर माला गसके हाथ से ले ली। लकडहारिन के मुख पर एक आनन्द की उज्ज्वलता खिल उठी, अन्तराल से उसी क्षण उच्चहास्य की उच्छवासध्वनि सुनाई पडी।

दूसरे दिन सबेरे उपद्रव करने के लिए पटल ने यतीन के कमरे मे जाकर देखा, घर सूना है। एक कागज पर केवल लिखा है—'भाग रहा हूँ—यतीन।'

'ओ लकडहारिन, तेरा वह भाग गया। उसे रोक नही सकी।' कहकर लकडहारिन की वेणी पकडकर हिलाती हुई पटल गृहस्थी के काम करने चली गई।

बात को समझने मे लकडहारिन को कुछ समय न लगा। वह चित्र की भाति खडी रहकर स्थिर दृष्टि से सामने की ओर देखती रही। तत्पश्चात् धीरे धीरे यतीन के कमर मे आकर देखा, उसका घर खाली है। उसके पहले दिन की सया का उपहार माला टेबिल के ऊपर पडी हुई है।

बसन्त का प्रातःकाल स्निग्ध-सुन्दर था, धूप कम्पित-कृष्णचूडा[१] की शाखा के भीतर से छाया मिश्रित होकर, बरामदे के ऊपर आकर गिर रही थी। गिलहरी पूँछ को पीठ पर उठाय दौडधूप कर रही थी एव सभी पक्षी मिलकर अनेको स्वरो मे गीत गाते हुए अपने वक्तव्य-विषय को किसी भी प्रकार समाप्त नही कर पा रहे थे पृथ्वी के इस कोने मे, इस थोडी सी सघन पत्तो की छाया एव धूप रचित जगत् खण्ड के बीच प्राणो का आनन्द प्रस्फुटित हो रहा था, उसी के बीच यह बुद्धिहीन बालिका अपने जीवन का, अपने चारो ओर का कोई

१ एक प्रकार का लाल रग का फूल, जिसे कही कही पनसियाना भी कहा जाता है।

सगत अथ नही समझ पा रही थी। सब कुछ कटिन पहेली है। क्या हुआ क्या ऐसा हुआ, उसके बाद यह प्रभात यह घर, यह जो कुछ सभी ऐसा एकदम शून्य क्या हो गया। जिसे समझने की सामर्थ्य कम है उस अचानक एक दिन अपने हृदय का इस अतन वेदना के रहस्यगभ मे काई भी दीपक हाथ म न देकर किसने गिरा दिया। ससार के इस सहज उच्छवसित प्राणो के राज्य म इन पड पौधे मृग-पक्षिया के आत्मा विस्मृत कलरव के बीच कौन उसे फिर खीचकर ला सकेगा।

पटल गृहस्थी का काम निवटा कर लकडहारिन की खोज लेन आई तो देखा, वह यतीन के परित्यक्त कमरे म उसकी खाट के पाये को पकडे हुए धरती पर पडी हुई—सूनी शय्या को जैसे पाँव पकड कर मना रही हो। उसके हृदय के भीतर जो एक अमृत का पात्र छिपा हुआ था उसी का जस शून्यता के चरणा म निष्फल आश्वासन से औंधा करके ढाले दे रही है—भूमितल पर पुजीभूत वह स्खलितकेशा (खुले हुए केशा वाली) कुण्ठितवासना नारी जम एकाग्रता की भाषा म कह रही है, ले लो ले लो। अरे मुझे ले लो।

पटल विस्मित होकर बोली, 'यह क्या हो रहा है लकडहारिन।'

लकडहारिन उठी नही, वह जसी पडी थी, वैसी ही पडी रही। पटल द्वारा समीप आकर उसे स्पश करत ही वह उच्छवासित हो, फफक फफक कर रोन लगी।

पटल उस समय चकित होकर कह उठी, अरी मुँहजली सवनाश कर दिया। मरमिटी!

हरकुमार से पटल लकडहारिन की अवस्था जताती हुई बोली, 'यह क्या विपत्ति घटी। तुम क्या कर रहे थे तुमने मुझे क्यो नही टोका!

हरकुमार ने कहा—'तुम्हे टोकने का तो मुझे कभी का अभ्यास नही है। टोकने से फल भी क्या मिल जाता।

पटल—'तुम कैसे पति हो ? मैं यदि भूल करूँ, तुम मुझे जबदस्ती रोक नही सकत ? मुझे तुमने यह खेल क्यो खेलने दिया ?'

यह कहकर वह दौडती हुई जाकर पृथ्वी पर पडी हुई बालिका का कण्ठ पकडकर कहने लगी—'मरी लक्ष्मी बहिन, तुझे क्या कहना है मुझम स्पष्ट कह ।'

हाय, लकडहारिन क पास एसी भाषा कहाँ है कि वह अपने हृदय क अव्यक्त रहस्य की बात का कह सके। वह एक अनिवचनीय वेदना क ऊपर अपने सम्पूण हृदय को दबाये पडी थी—वह वेदना क्या थी ससार म वसी और किसी को भी होती ह या नही उसे ससार मे क्या कहते है लकडहारिन यह कुछ भी नही जानती । वह केवल रोकर ही कह सकती है, मन की बात जबान का उस पर और कोई उपाय नही ह ।

पटल ने कहा 'लकडहारिन तरी दीदी बडी दुष्ट है, परन्तु उसकी बात पर तू इस प्रकार विश्वास कर लेगी इसे तो उसने कभी मन मे भी नही सोचा । उसकी बात पर कोई कभी भी विश्वास नही करता तूने एसी भूल क्यो की ? लकडहारिन एक बार मुँह उठाकर अपनी दीदी के मुँह की आर देख उस क्षमा कर।'

परन्तु लकडहारिन का मन उस समय विमुख हो गया था, वह किसी भी प्रकार पटल के मुँह की ओर नही देख सकी उसने और भी जार स दोनो हाथो के बीच अपना माथा छिपा लिया। वह अच्छी तरह सब बातें न समझन पर भी एक प्रकार के मूढभाव से पटल के प्रति क्रोध कर बठी । पटल उस समय धीरे धीरे बाहुपाश खोलकर उठ गई एव खिडकी के समीप पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध भाव स खडी होकर फाल्गुन मास की रौद्र-चिक्कण (धूप से चिकने) सुपारी के वृक्षा के पत्तो की ओर देखती हुई दोना नेत्रो स जल बहाने लगी।

दूसरे दिन लकडहारिन फिर दिखाई नही पड सकी। पटल उसे

आदरपूवक अच्छे-अच्छे गहने एव कपडे दकर सजाती थी। स्वय वह लापरवाह थी अपनी सजावट के सम्बध म उसका कोई यत्न नही था, परन्तु साज सज्जा के सभी शौक वह लक्डहारिन के ऊपर डालकर मिटा लेती थी। वहुकाल सचित वे समस्त वस्त्राभूपण लक्डहारिन के कमरे की मेज के ऊपर पडे हुए थे। अपने हाथो मे कगन, नाक की लौंग तक को वह उतारकर रख गई थी। अपनी पटल दीदी क इतन दिना तक सम्पूण आदर का उसन जैस शरीर स पाछकर मिटा दन का प्रयत्न किया था।

हरकुमारबाबू न लक्डहारिन की खाज के लिए पुलिस म खबर दी। उस बार प्लेग दमन की विभीपिका से इतन लाग, इतना आर भाग रह थे कि उन सब भागने वाला के समूह के बीच से एक विशेप व्यक्ति का छाट लाना पुलिस के लिए कठिन हा गया। हरकुमारबाबू न दो चार बार गलत आदमिया के सधान से दुख एव लज्जा पाकर लक्डहारिन की आशा का परित्याग कर दिया। अज्ञात की गाद स उन्होने जिसे पाया था, अनात की गाद म ही वह फिर जा छिपी।

यतीन ने विशेप चेप्टा करके सवा समिति के प्लेग के अस्पताल म डाक्टरी का पद प्राप्त कर लिया था। एक दिन दापहर के समय घर से खा पीकर अस्पताल म आकर उसन सुना अस्पताल के स्त्री विभाग म एक नई रोगिणी आई है। पुलिस उस रास्त से उठाकर लाई है।

यतीन उस दखन गया। लडकी क मुख का अधिकांश भाग चादर से ढँका हुआ था। यतीन ने पहल उसका हाथ पकडकर नाडी देखा। नाडी म ज्वर अधिक नही था परन्तु दुवलता अत्यन्त थी। तब परीक्षा के लिए मुँह की चादर हटाकर दखा, वही लक्डहारिन!

इस बीच पटल क पास स यतीन का लक्डहारिन का सम्पूण विवरण ज्ञात हा गया था। अव्यक्त हृदयभाव के द्वारा छायाच्छन्न उसके उन्ही दो हारिणी जस नत्रो न काम के अवकाश म यतीन की

ध्यान दृष्टि के ऊपर केवल अश्रुहीन कातरता विकीर्ण की थी। आज उन्हीं राग निमीलित नेत्रों की सुदीर्घ पलकों ने लकड़हारिन के क्षीण कपोलों के ऊपर कालिमा की रेखा खीच दी थी। देखते ही यतीन के हृदय को भीतर से किसी ने जैसे दबाकर पकड़ लिया। इस लड़की को विधाता ने इतने यत्नपूर्वक फूल के समान सुकुमार बनाकर गढ़ा, तब दुर्भिक्ष मे निकालकर महामारी मे लाकर क्यो डाल दिया। आज यह जो कोमल प्राण क्लिष्ट होकर बिछौने के ऊपर पड़े हुए हैं, ये अपने थोड़े से कितने दिनों की आयु मे इतनी विपत्ति का आघात इतनी वेदना का भार सहकर किस प्रकार कहा बच रहे हैं। यतीन ही फिर इसके जीवन के बीच एक और तीसरे संकट के समान कहां से आकर गिर पड़ा। रुद्ध-दीर्घ नि श्वास यतीन के वक्षद्वार पर आघात करने लगा—परन्तु उस आघात की ताड़ना से उसके हृदय के तारो मे एक सुख की मीड़ भी बज उठी। जो प्यार संसार मे दुर्लभ है यतीन को वह बिना चाहे ही, फाल्गुन मास के एक मध्याह्न मे, एक पूर्ण विकसित माधवी मंजरी के समान अचानक ही उसके पाँवों के पास अपने आप आकर गिर पड़ा था। जो प्यार इस प्रकार मृत्यु के द्वार तक आकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा हो, पृथ्वी का कौन-सा व्यक्ति उस देवभोग्य नैवेद्यलाभ का अधिकारी है।

यतीन लकड़हारिन के पास बैठकर उसे थोड़ा थोड़ा गरम दूध पिलाने लगा। पीते-पीते बहुत देर बाद उसने दीर्घ नि श्वास छोड़कर आँखें मलीं। यतीन के मुँह की ओर देखकर उसे सुदूर स्वप्न की भांति जैसे मन ही मन याद करने की चेष्टा करने लगी। यतीन ने जब उसके कपाल पर हाथ रख, कुछ झुक कर कहा—'लकड़हारिन' तब उसके अज्ञान का अन्तिम सूत्र भी टूट गया—यतीन को उसने पहिचाना एव तभी उसके नेत्रों के ऊपर वाष्पकोमल एक और मोह का आवरण पड़ गया। प्रथम मेघ समागम के सुगम्भीर आषाढ़कालीन आकाश की भांति

लकडहारिन के दोनो काले नेत्रो के ऊपर एक जैसे सुदूरव्यापी मजल स्निग्धता घिर आई।

यतीन ने अकरुण यत्न सहित कहा, 'लकडहारिन, इस दूध को समाप्त कर डालो।'

लकडहारिन कुछ उठ बैठी, प्याले के ऊपर से यतीन के मुख को स्थिर दृष्टि से देखते हुए उस दूध को धीरे धीरे पीकर समाप्त कर दिया।

अस्पताल के डाक्टर का केवल एक ही रोगी के पास हर समय बैठे रहने से काम नही चलता, देखने म भी अच्छा नही लगता। अन्यत्र कर्तव्य निबटाने के लिए यतीन जब उठा, उस समय भय और निराशा से लकडहारिन के दोनो नेत्र व्याकुल हो उठे। यतीन ने उसका हाथ पकडकर उसे आश्वासन देते हुए कहा, मैं फिर अभी आता हूँ, लकडहारिन, तुम्हे कोई भय नही है।'

यतीन ने अधिकारियो को सूचित किया कि इस नई लाई गई रोगिणी को प्लेग नही है, वह खाना न खाने के कारण दुर्बल होकर गिर गई है। यहाँ अन्य प्लेग के रोगियो के साथ रहने पर उस पर विपत्ति घट सकती है।

विशेष प्रयत्न करके यतीन ने लकडहारिन को अन्यत्र ले जाने की अनुमति प्राप्त कर ली और अपने घर ले गया। पटल को सब खबर देकर एक चिट्ठी भी लिख दी।

उस दिन सन्ध्या के समय रोगी एव चिकित्सा को छोडकर घर मे और कोई नही था। सिरहाने के समीप एक रगीन कागज के घेरे में एक किरासिन तेल का लम्प छायाच्छन्न मृदु आलोक विकीर्ण कर रहा था, ब्रैकेट के ऊपर रखी एक घडी निस्तब्ध घर म टिकटिक शब्द से अपना दोलक हिला रही थी।

यतीन ने लकड़हारिन के मस्तक पर अपना हाथ रखते हुए कहा, 'तुम्हें कैसा लग रहा है, लकड़हारिन ?'

लकड़हारिन ने कोई उत्तर न देकर यतीन के हाथ को अपने कपोल पर दबाकर रख लिया।

यतीन ने फिर जिज्ञासा की, 'अच्छा लग रहा है ?'

लकड़हारिन ने कुछ आँखें बन्द करते हुए कहा, हाँ।'

यतीन ने जिज्ञासा की—तुम्हारे गले में यह क्या है लकड़हारिन ?'

लकड़हारिन ने झटपट वस्त्र खींचकर उसे ढँकने की चेष्टा की—यतीन ने देखा, वह एक सूखे हुए मौलश्री के फूलों की माला थी। तब उसे याद आया, वह माला कौनसी है। घड़ी के टिक् टिक् शब्द के बीच यतीन चुप बैठकर सोचने लगा। लकड़हारिन की यह छिपाने की पहली चेष्टा है अपने हृदय के भाव को छिपाने का यह उसका पहला प्रयास है। लकड़हारिन मृग शावक थी, वह कब हृदय के बोझ से दबी हुई नारी हो उठी। किस धूप के आलोक में, किस धूप के उत्ताप से उसकी बुद्धि के ऊपर का सम्पूर्ण कुहासा हटकर उसकी लज्जा, उसकी शङ्का, उसकी वेदना इस प्रकार अचानक प्रकाशित हो उठी।

रात के दा-ढाई बजे के समय यतीन चौकी पर बैठा हुआ ही नींद में डूब गया था। अचानक द्वारा खुलने के शब्द से चौंककर उठते हुए देखा, पटल एवं हरकुमारबाबू हाथ में एक बड़ा-सा बैग लिए घर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

हरकुमार ने कहा—तुम्हारी चिट्ठी पाकर कल सवेरे आने की सहकर बिछौने पर सोया था। आधी रात में पटल ने कहा, 'अरे सुनो, कल सुबह जाने पर लकड़हारिन को नहीं देख पायेंगे—हम इसी समय जाना होगा। पटल को किसी भाँति समझाकर नहीं रक्खा जा सका—उसी समय एक गाड़ी करके बाहर निकल पड़े।

पटल न हरकुमार से कहा 'चलो, तुम यतीन के बिछौने पर सोओ।

हरकुमार थोडी-सी आपत्ति का आडम्बर कर यतीन के कमरे में जाकर सो गये, उन्हें नींद आने मे भी देर नही हुई।

पटल ने लौटकर यतीन को कमरे के एक कोने मे बुलाकर पूछा, आशा है ?'

यतीन ने लकडहारिन के पास आकर, नाडी देखकर सिर हिलाते हुए इशारे मे जताया कि आशा नही है।

पटल ने लकडहारिन के समीप अपने को प्रकट न कर, यतीन को अलग ले जाकर कहा 'यतीन सत्य बोलो, तुम क्या लकडहारिन को प्यार नही करते।'

यतीन पटल को कोई उत्तर न दे, लकडहारिन के बिछौने के पास आकर बठ गया। उसका हाथ पकडकर नाडी देखते हुए बोला, 'लकडहारिन लकडहारिन।'

लकडहारिन आँखें खोलकर मुँह पर एक शान्त मधुर हँसी का आभासमात्र लाती हुई बोली— क्या है, दादा बाबू।'

यतीन ने कहा—'लकडहारिन, अपनी इस माला का मेरे गले म पहना दो।'

लकडहारिन निनिमेष अपलक नेत्रो स यतीन के मुँह की ओर देखती रही।

यतीन न कहा, अपनी माला मुझे नहीं दोगी ?'

यतीन के इस आदरमय प्रश्रय को पाकर लकडहारिन के मन म पूर्वकृत अनादर का तनिक-सा अभिमान जाग्रत हो उठा। उसने कहा 'क्या होगा दादा बाबू।'

यतीन न दोनो हाथों म उसका हाथ लेकर कहा, मैं तुम्हे प्यार करता हूँ लकडहारिन।

सुनकर क्षणभर के लिए लकडहारिन स्तब्ध रही, तदुपरान्त दोनो आँखो से अजस्र जल वरसने लगा। यतीन विछौने के पास झुककर घुटने टेककर बैठ गया, लक्डहारिन के हाथा के समीप मस्तक को नीचे झुकाय रक्खा। लकडहारिन ने (अपने) गले मे से माला निकालकर यतीन के गले मे पहना दी।

तभी पटल ने उसके पास आकर पुकारा 'लक्डहारिन।'

लक्डहारिन ने अपने क्षीण मुख को उज्ज्वल करते हुए कहा, 'क्या है दीदी।

पटल ने उसके पास आकर उसका हाथ पकडकर कहा, 'मेरे ऊपर तुझे कोई क्रोध तो नही है वहिन ?'

लकडहारिन ने स्निग्ध कोमल दृष्टि डालत हुए कहा, 'नही दीदी।'

पटल ने कहा, 'यतीन, एक वार तुम उस कमरे म जाओ।'

यतीन के बगल के घर म चले जाने पर पटल ने बैग खोलकर लक्डहारिन के समस्त वस्त्राभूपण उसके भीतर से वाहर निकाले। रोगिणी को अधिक न हिलाडुलाकर एक लाल बनारसी साडी लपेटकर उसके मलिन-वस्त्रो के ऊपर बाध दी। फिर एक एक करके चार चार चूडियाँ उसके हाथा म डालकर दानो हाथा मे दो कगन पहना दिये। उसके बाद पुकारा, 'यतीन।'

यतीन के आते ही उसे विछौने पर बैठाकर पटल न उसके हाथ मे लकडहारिन का इकलडा सोने का हार दिया। यतीन ने उस हार का लेकर धीरे धीरे लक्डहारिन का मस्तक उठाकर, उसे पहिना दिया।

प्रभात का आलोक जव लक्डहारिन के मुँह पर आकर पडा, तव उस प्रकाश को फिर वह न देख सकी। उसकी अम्लान मुख-कांति को देखकर मन को लगा, वह मरी नही है, परन्तु वह्री जसे एक अतल-स्पश सुखस्वप्न के वीच निमग्न हो गई थी।

जिस समय मृत-देह को ले जाने का समय हुआ तब पटल ने लकड़हारिन की छाती के ऊपर गिर कर रोते रोते कहा, 'बहिन, तेरा भाग्य अच्छा है, जीवन की अपेक्षा तेरा मरण सुखमय रहा।'

यतीन लकड़हारिन की उस शांत स्निग्ध मृत्युछवि की ओर देखता हुआ सोचने लगा—'जिनका धन था, उन्होंने ले लिया, मुझे भी वंचित नहीं किया।'

मेघ और धूप

पहिला परिच्छेद

कल के दिन वर्षा हो चुकी है। अ
वर्षाहीन प्रभात म म्लान धूप आर खण्ड
मिलकर प्राय परिपक्व आउस धान[1] के खे
पर वारी-वारी से अपनी-अपनी सुदीघ तूलि
को फेरते चले जा रहे हैं, सुविस्तृत श्याम
पट एकवारगी आलोक के स्पश से उज्ज्वलपा
वण धारण कर रहा है और दूसरे ही क्षण छा
के लेपन से प्रगाढ स्निग्धता मे अङ्कित
(डूब) जाता है।

जिस समय सम्पूण आकाश रगभूमि
मेघ और धूप, केवल यही दोना अभिनेता अ
अपने अभिनय का कर रह थे उस समय नीचे
ससार-रगभूमि पर कितन स्थानो पर कितनेअ
नय चल रह थे, उनकी काई सख्या नही है

हम जहाँ एक क्षुद्र जीवन नाटक के
को उठा रहे हैं, वहाँ ग्राम्य पथ के सहारे

---

[1] एक प्रकार का शीघ्र पक जाने वाला धान।

मकान दिखाई दे रहा है। बाहर का एक कमरा ही केवल पक्का है एवं उसी मकान के दोनों बगल से जीर्णप्राय ईंटों की दीवाल कुछ मिट्टियों द्वारा मिट्टी के मकान से वेष्टित है। सड़क की ओर सीखचों वाली खिड़की से देखा जा सकता है, एक युवापुरुष नंगे शरीर तख्तपोश पर बैठा हुआ बांये हाथ में पल पल पर ताड के पत्ते का पखा लिए हुए गर्मी एवं मच्छरों को दूर करने की चेष्टा कर रहा है और दाहिने हाथ में पुस्तक लिये हुए पढ़ने में तल्लीन है।

बाहर ग्राम-पथ पर एक बालिका डोरिया के कपडे पहने आँचल में कुछ काले जामुन लिए एक एक समाप्त करती हुई, उक्त घर के बाहर खिड़की के सामने बारम्बार इधर-से-उधर टहल रही है। चेहरे के भावों से स्पष्ट ही जान पड़ता है, कि भीतर जो मनुष्य तख्तपोश पर बैठा हुआ पुस्तक पढ रहा है, उसके साथ बालिका का घनिष्ट परिचय है—एवं किसी प्रकार से वह उसके ध्यान को आकर्षित करके, अपनी मौन अवज्ञा द्वारा जता देना चाहती है कि इस समय जामुन खाने में मैं अत्यन्त व्यस्त हूँ, तुम्हारी मुझे तनिक भी परवा नहीं है।

दुर्भाग्यवश घर के भीतर बैठा हुआ अध्ययनशील पुरुष आँखों से कुछ कम देखता है, दूर से बालिका की नीरव उपेक्षा उसे स्पर्श नहीं कर पाती। बालिका भी इसे जानती है अस्तु बहुत देर तक व्यर्थ टहलने के बाद नीरव उपेक्षा के बदले जामुन की गुठलियों का व्यवहार करना पड़ा। अन्धे के समीप अभिमान की विशुद्धता की रक्षा करना ऐसा ही दुरूह है।

जब क्षण क्षण पर दो चार सख्त गुठलियाँ जैसे भाग्यवश पागल होकर लकड़ी के दरवाजे पर ठक ठक शब्द कर उठीं, तब पाठमग्न पुरुष ने मस्तक उठाकर देखना चाहा। मायाविनी बालिका इसे जान लेने पर द्विगुण निविष्टभाव (दिलचस्पी) के साथ आंचल से खाने योग्य सुपक्व जामुन छांटने में प्रवृत्त हो गई। पुरुष ने भौंह मरोड़कर विशेष

प्रयत्न के साथ देखते हुए बालिका को पहिचान लिया एव पुस्तक रख कर खिड़की के समीप उठकर खडे हो मुस्कराते हुए कहा—'गिरि-बाला !

गिरिबाला अविचलित भाव से अपने आँचल के बीच जामुन परीक्षा के कार्य म पूर्ण मग्न होकर मन्दगति से, अपने मन म एक एक पग गिनती हुई, चलने लगी।

उस समय क्षीण दृष्टि युवापुरुष को समझने मे देर न लगी कि किसी एक अज्ञानजन्य अपराध का दण्ड विधान हो रहा है। झटपट बाहर आकर कहा—'क्या आज मुझे जामुन नही दोगी ?' गिरिबाला ने उस बात पर तनिक भी ध्यान न देकर बडी खोज और परीक्षापूर्वक एक जामुन को छाँटकर अत्यन्त निश्चिन्त मन से खाना आरम्भ कर दिया।

य जामुन गिरिबाला के बगीचे के जामुन है एव युवापुरुष का उनमे प्रतिदिन हिस्सा बँधा रहता है। क्या जाने, यह बात किसी भी प्रकार आज गिरिबाला को स्मरण नही रही, उसके व्यवहार से प्रकट हो रहा है कि इन्ह उसने अपने ही लिए बीना है। परन्तु अपने बगीचे से फल लाकर पराये दरवाजे के सामने आकर, छेडछाड करके खाने का क्या मतलब है इसे स्पष्ट रूप से नही समझा जा सका। तब पुरुष ने समीप आकर उसका हाथ पकड लिया। गिरिबाला ने पहले तो आडी तिरछी होकर हाथ छुडाकर चले जाने की चेष्टा की, तदुपरान्त अचानक आँसू बहाती हुई रो उठी, एव अचल के जामुनो को पृथ्वी पर पटककर दौडती चली गई।

प्रातःकाल की चचल धूप एव चचल मेघो ने सध्या के समय शान्त और श्रान्त भाव धारण कर लिया, शुभ्र स्फीत मेघ आकाश के आँगन म स्तूपाकार होकर खडे थे एव अपराह्नकालीन समाप्तप्राय आलोक वृक्षो के पत्तो पर तालाब के पानी पर एव वर्षा स्नात प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्गो पर चमचमा रहा था। फिर वही बालिका उसी घर की

खिड़की के सामने दिखाई दे रही है एवं घर के भीतर वही युवापुरुष बैठा हुआ है। अन्तर केवल यही है कि इस समय बालिका के अंचल में जामुन नहीं है एवं युवक के हाथ में भी पुस्तक नहीं है। इसकी अपेक्षा कुछ कुछ गुरुतर एवं निगूढ़ अन्तर भी था।

इस समय भी बालिका किस विशेष आवश्यकता से इस विशेष स्थान पर आकर चक्कर काट रही है यह कहना कठिन है। और जो भी आवश्यक रहा हो घर के भीतर बैठे हुए मनुष्य के साथ बातचीत करने की जो आवश्यकता है यह भी किसी तरह बालिका के व्यवहार से प्रकट नहीं हो रहा है। अपितु जान पड़ता है वह देखने आई है कि सबेर जिन जामुनों को फेंक गई थी सन्ध्या के समय उनका कोई अंकुर बाहर निकला है अथवा नहीं '

परन्तु अंकुर बाहर न निकलने के अन्यान्य कारणों के बीच एक बड़ा कारण यह था कि वे फल इस समय युवक के सामने तख्तपोश पर ढेर करा रक्खे थे एवं बालिका जिस समय पल पल पर झुक कर किसी एक अनिर्देश्य काल्पनिक पदार्थ की खोज में लगी हुई थी उस समय युवक मन की हँसी को छिपाकर, अत्यन्त गम्भीर भाव से एक-एक जामुन को छाँट कर यत्नपूर्वक खा रहा था। अन्त में जब दो एक गुठलियाँ दैववशात् बालिका के पावों के पास यही क्या, पावों के ऊपर भी आ गिरीं तब गिरिबाला समझ गई कि युवक बालिका के अभिमान का बदला ले रहा है। परन्तु क्या यह उचित है? जिस समय वह अपने क्षुद्र-हृदय के समस्त अभिमान को विसर्जित कर, आत्म समर्पण करने का अवसर ढूंढ रही थी, उस समय क्या उसके अत्यन्त दुरूह मार्ग में बाधा देना निष्ठुरता नहीं है। वह पकड़े जाने को आई है इस बात के पकड़ में आ जाने में बालिका जब क्रमश लाल पीली होकर भाग जाने का मार्ग ढूंढ़ने लगी तभी युवक ने बाहर आकर उसका हाथ पकड़ लिया।

सवेरे के समान इस समय भी बालिका न आडी तिरछी होकर हाथ छुडाकर भाग जाने की बडी चेष्टा की, परन्तु रोई नही। अपितु रक्तवर्ण हो, गरदन टढी कर, बल प्रयोग करने वाले की पीठ की ओर मुँह फाडकर प्रचुर परिमाण म हँसने लगी और जस केवल मात्र बाह्य आकपण स झुककर, पराजित बन्दी के भाव स लाह क सीखचा स ढँके कारागार के भीतर प्रवेश किया।

आकाश मे मघ धूप का खल जैसा सामान्य था, पृथ्वी तल पर इन दा प्राणिया का खेल भी उसी प्रकार सामान्य वैसा ही क्षणस्थायी था। और आकाश मे मेघ धूप का खेल जिस तरह साधारण नही है एव अप्रसिद्ध मनुष्या का एक काम-काज-हीन वर्षा के न्नि क्षुद्र इतिहास ससार मे सैकडो घटनाआ के बीच तुच्छ जसा लग सकता है परन्तु वह तुच्छ नही ह जा वृद्ध विराट अदृष्ट अविचलित गम्भीर मुख द्वारा अनन्तकाल से युगो के साथ युगान्तरो को गूँथता चला आ रहा है, वही वृद्ध बालिका के इस प्रात सायकालीन तुच्छ हास्य-रोदन के बीच जीवनव्यापी सुख-दुख के बीज अकुरित कर रहा है। तो भी बालिका का यह अकारण अभिमान बहुत ही अथहीन जान पडता है। केवल दशका के समीप ही नही, इस क्षुद्र नाटक के प्रधान पात्र उक्त युवक के समीप भी। यह बालिका क्या किसी दिन तो नाराज हाती ह, किसी दिन अपरिमित स्नह प्रकट करती रहती है, किसी किसी दिन अथवा प्रतिदिन मात्रा बढा देती है किसी किसी दिन अथवा प्रतिदिन मात्रा एकदम बन्द कर देती ह, इसका कारण ढूढ पाना सहज नही है। किसी किसी दिन जैसे अपनी समस्त कल्पना, भावना एव नैपुण्य को एकत्र कर, युवक के सन्तोप साधन मे प्रवृत्त हो जाती हैं फिर किसी-किसी दिन अपनी समस्त क्षुद्र शक्ति, अपनी सम्पूण कठारता को एकत्र कर उसे आघात पहुँचाने का प्रयत्न करती ह। कष्ट न पहुँचा सकने पर उसकी कठोरता दुगुनी बढ जाती है, कृतकाय होन पर वह कठारता

पश्चाताप के अश्रु-जल म सौ प्रकार स गलकर अजस्र स्नह धारा म प्रवाहित होती रहती है।

इस तुच्छ मध धूप क जेल का पहला तुच्छ इतिहास दूसरे परिच्छेद म सक्षिप्त रूप म स्पष्ट किया जा रहा है।

दूसरा परिच्छेद

गाँव म और सभी लोग दलबन्दी, षडयन्त्र, ईख की खेती, झूठे मुकद्दमे एव पाट के कारोबार म लग रहते हैं, भावा की आलोचना एव साहित्यचर्चा करत हैं केवल शशिभूषण और गिरिबाला।

इसम किसी को उत्सुकता अथवा उत्कण्ठा की कोई बात नही है। *कारण, गिरिबाला की आयु दस वर्ष एव शशिभूषण एक सद्य* विकसित एम० ए० बी० एल० हैं। दोनो केवल पडोसी ह।

गिरिबाला के पिता हरकुमार एक समय अपने गाव के पट्टेदार थे। *अब दुरावस्था म पडकर, सबकुछ बेचकर, अपने विदेशी जमींदार* के यहाँ नायब का पद ग्रहण किय हुए हैं। जिस परगने म उनका निवास है, उसी परगने की नायबी है अस्तु उन्हे जन्म-स्थान छोडकर कहीं जाना नही पडता।

शशिभूषण एम० ए० पास करके कानून की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है, परन्तु किसी भी प्रकार किसी भी काम मे नही लग सका। लोगो के साथ मिलना जुलना अथवा सभा-सोसाइटियो म दो बातें कहना यह भी उसके द्वारा नही हो सकता। आँखो से कम दिखाई देने के कारण लोगो को पहिचान भी नही सकता और इसीलिए भौंहें सिकोड कर देखना पडता है लोग इस बात को उद्दण्डता कहकर आलोचना करते हैं।

कलकत्ते के जन-समुद्र मे अपने मन माफिक अकेला रहना शोभा देता है, परन्तु देहाती गाव मे यह बात विशेष स्पर्धा (हिमाकत) जैसी देखी (समझी) जाती है। शशिभूषण के पिता ने जब बहुत कोशिश के बाद हार मानकर अकर्मण्य पुत्र को गाव म अपनी साधारण जमीदारी की देखभाल के लिए भेज दिया, तब शशिभूषण ग्रामवासियो के समीप बडे उत्पीडन, उपहास एव लाछना का शिकार बन गया। लाछना का एक और भी कारण था, शान्तिप्रिय शशिभूषण विवाह करने के लिए तैयार नहीं था—कन्या दाय ग्रस्त पिता-माता उसकी इस अनिच्छा का दुस्सह अहकार समझकर किसी भी प्रकार क्षमा नही कर पाये।

शशिभूषण के ऊपर जितने ही उपद्रव होने लगे, शशिभूषण उतना ही अपने विवर (दिल) के भीतर अदृश्य होने लगा। एक कोने वाले कमरे म तख्तपोश के ऊपर कितनी ही अँगेजी की पुस्तकें लिये बैठा रहता था, जब भी जिसकी इच्छा होती पढने लगता, यही था उसका काम—जमीदारी की कैसे रक्षा होती थी, इसे जमीदारी ही जानती थी।

और पहले ही आभास दिया जा चुका है, मनुष्यो म उसका सम्पर्क था केवल गिरिबाला के साथ।

गिरिबाला के भाई स्कूल जाते एव लौटकर अपनी मूढ बहिन से किसी किसी दिन पूछा करते—पृथ्वी का आकार कैसा है, किसी दिन प्रश्न करते—सूर्य बडा है कि पृथ्वी बडी है—वह जब गलत बताती तब उसके प्रति बडी अवज्ञा दिखाते हुए भूल का सशोधन करते। सूर्य पृथ्वी की अपेक्षा बडा है, यह मत यदि गिरिबाला के निकट प्रमाण के अभाव मे प्रसिद्ध जान पडता और उस सन्देह को यदि वह साहस करके प्रकट करती तो उसके भाई उसकी दुगनी उपेक्षा करके कहते—'हिश ! हमारी पुस्तक म लिखा है और तू ।'

छपी हुई पुस्तक मे ऐसी बात लिखी है।' सुनकर गिरिबाला पूर्णत निरुत्तर हो जाती, दूसरा और कोई प्रमाण उसे आवश्यक नहीं जान पडता था।

परन्तु उस मन-ही-मन बड़ी इच्छा होती—वह भी बड़े भाइयो की भाँति पुस्तक लेकर पढ़े। किसी किसी दिन वह अपने घर मे बैठकर किसी एक पुस्तक को खोलकर 'बिड बिड' करती हुई पढ़ने का अभिनय करती एव व्यर्थ ही पन्ने उलटती जाती। छाप के काले-काले छोटे-छोटे अपरिचित अक्षर जैसे किसी एक महान रहस्य मन्दिर के सिंहद्वार पर झुण्ड के झुण्ड पक्तिबद्ध हो, अपने कन्धो पर इकार, ऐकार रेफ को उठाए, पहरा देते हुए, गिरिबाला के किसी भी प्रश्न का कोई उत्तर नही देते। 'कथामाला' (कहानी की पुस्तक) अपने बाघ, सियार, घोडे, गधे की कोई भी बात इस कौतूहल कातर बालिका के समक्ष प्रकट नही करती एव 'आख्यान मजरी' अपने समस्त आख्यानो को लिये हुए मौनव्रती की भाँति चुपचाप देखती रहती।

गिरिबाला ने अपने भाइयो के समक्ष पढना सीखने का प्रस्ताव किया, परन्तु उसके भाइयो ने उस बात पर कान भी नही दिया। एक मात्र शशिभूषण ही उसका सहायक था।

गिरिबाला के लिए 'कथामाला' एव 'आख्यान मजरी' जिस प्रकार दुर्भेद्य और रहस्यपूर्ण थी, शशिभूषण भी पहले-पहले कुछ उसी प्रकार का था। लोहे के सीखचो के भीतर मार्ग के सहारे छोटे से बैठक के कमरे म वह युवक अकेला तख्तपोश के ऊपर पुस्तको स घिरा बैठा रहता था। गिरिबाला सीखचो को पकड़कर बाहर ही खडी रहकर अवाक् हो, इस पीठ झुकाए हुए पढने म तल्लीन अद्भुत व्यक्ति को निरीक्षण करती हुई देखती, पुस्तको की सख्या की तुलना करके मन-ही मन स्थिर करती, शशिभूषण उसके भाइयो की अपेक्षा अधिक विद्वान है। इस जैसा आश्चर्यजनक व्यापार उसके समीप और कुछ नही था। कथा-माला आदि पृथ्वी की प्रधान प्रधान पाठ्य पुस्तकें शशिभूषण ने जैसे अन्त तक पढकर फेंक दी हैं, इस सम्बन्ध मे, उसे तनिक भी सन्देह नहीं था। इसीलिए शशिभूषण जब पुस्तको के पन्ने उलटता, वह स्थिर भाव स खडी रहकर उसके ज्ञान की सीमा का निर्णय नहीं कर पाती थी।

अ त म इस विस्मय मग्न बालिका ने क्षीण दृष्टि शशिभूषण के मनोयोग को भी आकर्षित किया। शशिभूषण एक दिन एक चमकदार जिल्द की पुस्तक खोलते हुए बोला—'गिरिबाला! तस्वीर देखेगी, आ।' गिरिबाला उसी क्षण दौडकर भाग आई।

परन्तु दूसरे दिन वह फिर डोरिया के कपडे पहिन उसी जगले के बाहर खडी हो उसी प्रकार गम्भीर मौन मनोयोगपूर्वक शशिभूषण के अध्ययन-कार्य को निरीक्षण करती हुई देखने लगी। शशिभूषण ने उस दिन भी बुलाया और उस दिन भी वह वेणी (चोट) हिलाती हुई ऊर्ध्वश्वास छोडती दौडकर भाग गई।

इस प्रकार उनके परिचय का सूत्रपात होकर क्रमश कब घनिष्टतम हो उठा एव कब बालिका जगले के बाहर से शशिभूषण के घर में प्रविष्ट हुई उसके तख्तपोश के ऊपर जिल्द बँधी पुस्तकों के स्तूप के बीच मे स्थान प्राप्त कर बठी उस तारीख का ठीक निणय करने के लिए ऐतिहासिक गवेषणा की आवश्यकता है।

शशिभूषण के समीप गिरिबाला के पढने लिखने की चर्चा आरम्भ हुई। सुनकर सब लोग हँसेंगे, यह मास्टर अपनी छोटी छात्रा को केवल अक्षर बनाना एव व्याकरण सिखाता था यही बात नही है—अनेक बडे-बडे काव्यों का अनुवाद करके सुनाता एव उसके मतामत को पूछता। बालिका क्या समझती इसे अन्तर्यामी ही जानते हैं परन्तु उसे अच्छा लगता, इसमे सन्देह नही है। वह समझना, न समझना मिलाकर अपने बाल हृदय में अनेकों विचित्र चित्र अङ्कित कर लेती। मौन नेत्रों को विस्फारित कर, मन लगाकर सुनती, बीच बीच में वह अत्यन्त असगत प्रश्न पूछती एव कभी कभी अकस्मात् एक असलग्न प्रश्न पर जा पहुँचती। शशिभूषण उसके लिए कभी कोई बाधा नही देता—बडे-बडे काव्यों के सम्बन्ध मे इस अतिक्षुद्र समालोचक की निन्दा, प्रशसा टीका, भाष्य सुनकर वह विशेष आनन्द प्राप्त करता। सारे गाँव मे गिरिबाला ही उसकी एकमात्र समझदार मित्र थी।

गिरिबाला के साथ शशिभूषण का प्रथम परिचय जब हुआ, तब गिरि की आयु आठ वप की थी अब उसकी आयु दस वप की हो गई है। इन दोनो वर्षों मे उसने अंग्रेजी और बँगला वर्णमाला सीखकर दो चार सरल पुस्तकें पढ डाली है एव शशिभूषण को भी देहाती गाँव इन दो वर्षों मे नितान्त साथी विहीन, नीरस नही जान पडा है।

तीसरा परिच्छेद

परन्तु गिरिबाला के पिता हरकुमार के साथ शशिभूषण की अच्छी तरह नही बनी। हरकुमार पहले पहल इस एम० ए०, बी० एल० के समीप मामले मुकदमे के सम्बन्ध म परामश लेने को आते थ। एम० ए०, बी० एल० उसमे कुछ अधिक मनोयोग नही करता एव कानून के सम्बन्ध मे नायब के समीप अपनी अज्ञानता स्वीकार करने म कुण्ठित नही होता। नायब इसे केवल छल ही समझते। इस प्रकार दो वप कट गये।

इस बार एक उद्दण्ड प्रजा (आसामी) पर शासन करना आवश्यक हो गया था। नायब महाशय उसके नाम भिन्न भिन्न जिलो से भिन्न भिन्न अपराध और दावे-नालिश दायर कर देने का अभिप्राय प्रकट कर, परामश देने के लिए शशिभूषण को कुछ अधिक दबाने लगे। शशिभूषण ने परामश देना तो दूर रहा, शान्त और दृढभाव से, हरकुमार से ऐसी दो चार बातें कह दी कि जो उन्हे तनिक भी मधुर नही जान पडी।

इधर फिर प्रजा के नाम भी एक मुकद्दमा हरकुमार नही जीत पाये। उनके मन म दृढ धारणा हो गई कि शशिभूषण उक्त हतभाग्य प्रजा का सहायक था, उन्होने प्रतिज्ञा की—'ऐसे व्यक्ति को गाँव से तुरन्त भगा देना पडेगा।'

शशिभूषण ने देखा, उसके खेतो मे गाय घुस जाती है उसके

उद की राशि मे आग लग जाती है, उसकी हद को लेकर झगडा होता है उसकी प्रजा सरलता से लगान नही देती एव उल्टे उसके नाम झूठे मुकद्दमे चलाने की तयारी करती है—यही क्यो, सन्ध्या के समय मार्ग मे निकलने पर उसे मारेंगे एव रात्रि के समय उसके रहने के मकान मे आग लगा देंगे, ऐसी सब अफवाह भी सुनी जाने लगी।

अन्त मे शान्तिप्रिय निरीह प्रकृति शशिभूषण गाव छोडकर कलकत्ता भाग जाने की तैयारी करने लगा।

वह यात्रा की तैयारी कर रहा था कि इसी समय गाँव मे ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट साहब का डेरा पडा। बन्दूकची, सिपाही, खानसामा, कुत्ता, घोडा, सईस, मेहतरा से सम्पूर्ण गाव चचल हो उठा। बालको के झुण्ड व्याघ्र के अनुवर्ती सियार के बच्चो के समान, साहब के अड्डे के समीप खडे होकर शङ्कित-कौतूहल से देखने लगे।

नायब महाशय बाकायदा मेहमानदारी-खाते मे खर्च लिखकर साहब के लिए मुर्गी, अण्डा, घी, दूध एकत्रित करने लगे। ज्वाइन्ट साहब के लिए जिस परिमाण मे खाद्य की आवश्यकता थी, नायब महाशय ने उसकी अपेक्षा बहुत अधिक परिमाण मे प्रसन्नतापूर्वक एकत्र कर दिया था। परन्तु सबेरे ही साहब का मेहतर आकर जब साहब के कुत्ते के लिये एक दम ही चार सेर घी का आदेश कर बैठा, तब दुष्ट ग्रह के वशीभूत होकर वह उन्हे सहन नही हुआ। मेहतर को उपदेश दिया कि साहब का कुत्ता यद्यपि देशी कुत्ते की अपेक्षा अधिक घी बिना घबराहट के हजम कर सकता है, तथापि इतने अधिक परिमाण मे चिकना पदार्थ उसके स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारक नही है। उसे घी नही दिया।

मेहतर ने जाकर साहब को बताया कि कुत्ते के लिए मास कहाँ मिल सकता है, यह मालूम करने को वह नायब के पास गया था परन्तु उसे जाति का मेहतर कहकर नायब ने अपमानपूर्वक उसे सब लोगो के सामने दूर करके भगा दिया, यही क्यो, साहब के प्रति भी उपेक्षा प्रदर्शित करने मे कुण्ठित नही हुआ।

—

एक तो ब्राह्मण का जात्याभिमान साहव लोगो को सहज ही असह्य जान पडता है, उसके ऊपर उनके मेहतर का अपमान करन का साहस किया गया था, इसस धैय की रक्षा करना उनके लिए असभव हो उठा। उसी समय चपरासी का आदेश किया— बुलाओ नायब का।

नायब कापते हुए शरीर स दुर्गा के नाम का जप करत-करते साहब के तम्बू के सामने जा खडे हुए। साहव न तम्बू से 'मच मच' शब्द करते हुए बाहर निकलकर, नायब से उच्च स्वर मे विजातीय उच्चारण मे जिज्ञासा की— तुमन किस वजह से हमार मेहतर को दूर किया?

हरकुमार ने सकपका कर हाथ जाडते हुए बताया—'साहब के मेहतर को दूर कर सकें ऐसी हिम्मत उनसे कभी भी नही हो सकती, बात यह है कि कुत्ते के लिए एक साथ चार सेर घी माग बठन पर पहले तो उन्होने उक्त चौपाये के कल्याण के लिए विनम्रभाव स आपत्ति प्रकट की थी, फिर घी इकट्ठा कर लान के लिये विभिन्न स्थाना पर आदमी भेज दिय हैं।'

साहब ने जिज्ञासा की—'किसे भजा है और कहाँ पर भेजा है।

हरकुमार न उसी समय जो मुँह पर आय, नाम बता दिये। उन उन नामो वाल व्यक्ति उन उन गाँवो म घी लाने के लिए गए है या नही यह जानने क लिए अत्यन्त शीघ्र आदमी भेजकर साहब ने नायब को तम्बू म बैठा लिया।

दूता ने अपराह्नकाल के समय लौटकर साहब को बताया, घी इकटठा करने के लिए कोई कही भी नही गया। नायब की सब बातें झूठी हैं और मेहतर ने जा सच्ची बात कही, उस बारे म हाकिम का अब सन्देह नही रहा। तब ज्वाइन्ट-साहब न क्रोध म गरजत हुए मेहतर को पुकारकर कहा—'इस साले के कान पकडकर तम्बू के चारो ओर घुडदौड कराओ। मेहतर न फिर तनिक भी विलम्ब न कर, चारो ओर के लोगो के बीच साहब की आज्ञा का पालन किया।

देखते-देखते बात घर घर फल गई हरकुमार घर म आकर

भोजन त्याग करके मुमूर्षु वत् पड रहे।

जमीदारी के काम के कारण नायब के बहुत से शत्रु थे, उन्होंने इस घटना से बहुत आनन्द पाया, परन्तु कलकत्ता जाने के लिए तैयार शशिभूषण ने जब इस समाचार को सुना, तब उसके सर्वांग का रक्त उत्तप्त हो उठा। सारी रात उसे नींद नहीं आई।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह हरकुमार के घर जा उपस्थित हुआ, हरकुमार उसका हाथ पकडकर व्याकुल भाव से रोने लगे। शशिभूषण ने कहा—'साहब के नाम मान हानि का मुकद्दमा चलाना होगा, मैं तुम्हारा वकील बनकर लडूँगा।'

स्वय मजिस्ट्रेट साहब के नाम मुकद्दमा चलाना होगा, सुनकर हरकुमार पहले ही भयभीत हो उठे, पर शशिभूषण ने किसी प्रकार नहीं छोडा।

हरकुमार ने विचार करने के लिए समय लिया। परन्तु जब देखा कि बात चारो ओर फैल गई एव शत्रुगण आनन्द प्रकट कर रहे हैं तब वे और नहीं ठहर सके, बोले—'बाबू! सुना तुम बिना कारण ही कलकत्ता जाने की तैयारी कर रहे हो, यह तो किसी प्रकार भी नहीं हो सकेगा। तुम्हारे समान एक व्यक्ति के गाव मे रहने से हमारा साहस कितना बना रहता है? जो भी हो, मेरा इस घोर अपमान से उद्धार करना ही होगा।'

चौथा परिच्छेद

जो शशिभूषण चिरकाल से लोक दृष्टि के अन्तराल से बचकर, एकान्त निजनता के बीच स्वय को छिपाये रखने का प्रयत्न करता आया था वही आज अदालत मे आ उपस्थित हुआ। मजिस्ट्रेट उसकी नालिस सुनकर, उसे प्राइवेट कमरे मे बुला ले जाकर, अत्यन्त सत्कार करके बोला—'शशिबाबू! इस मुकद्दमे को चुपचाप आपस मे समाप्त कर लेना क्या अच्छा नहीं रहेगा?'

शशिबाबू ने टेबल पर रक्खी एक कानून की किताब की जिल्द पर अपनी कुंचितभ्रू तीक्ष्ण दृष्टि को अत्यन्त गहराई के साथ डालते हुए कहा—'अपने मुवक्किल को मैं ऐसा परामर्श नहीं दे सकूँगा। वे प्रकट रूप से अपमानित हुए हैं, गुप्त रूप से इसका फैसला कैसे हो जायेगा ?'

साहब दो चार बातें कहकर समझ गए, इस स्वल्पभाषी स्वल्प दृष्टि व्यक्ति का सहज ही विचलित करना सम्भव नहीं है, बोले—'आल राइट बाबू ! देखा जाय, कहाँ तक क्या होता है।'

यह कहकर मजिस्ट्रेट साहब मुकद्दमे मे तारीख डालकर, देहात के दौरे के लिए बाहर निकल गये।

इधर ज्वाइंट साहब ने जमींदार को पत्र लिखा—'तुम्हारा नायब हमारे नौकरों का अपमान करके हमारे प्रति अवज्ञा दिखाता है, आशा करता हूँ, तुम इसका समुचित प्रतिकार करोगे।'

जमींदार ने घबराकर उसी समय हरकुमार को तलब किया। नायब ने आद्योपान्त सब घटना स्पष्ट कह दी। जमींदार ने अत्यन्त विरक्त होते हुए कहा—'साहब के मेहतर ने जब चार सेर घी मांगा था तुमने बिना कुछ कहे तुरन्त क्यों नहीं दे दिया ? तुम्हारे क्या बाप की कौडी लगती थी ?'

हरकुमार अस्वीकार नहीं कर सके कि इससे उनकी पैतृक-सम्पत्ति की किसी प्रकार हानि नहीं होती थी। अपराध स्वीकार करके बोले—'मेरे ग्रह खराब है इसी से ऐसी दुर्बुद्धि हो गई।'

जमींदार ने कहा—'उसके बाद फिर साहब के ऊपर नालिश करने के लिए तुम से किसने कहा ?'

हरकुमार ने कहा—'धर्मावतार ! नालिश करने की इच्छा मेरी नहीं थी। यह जो हमारे गाँव का शशी है, उसे कहीं भी कोई मुकद्दमा नहीं मिलता। यह छोकरा बहुत जोर डालकर प्रायः मेरी सम्मति लिये बिना ही इस हंगामे का बाँध बठा है।'

सुनकर जमीदार शशिभूषण के ऊपर क्रुद्ध हो उठा। समझा, वह बेवकूफ आदमी नया वकील है, किसी बहाने एक ऊधम खडा कर जनसाधारण के समक्ष परिचित होने के प्रयत्न मे है। नायव को हुक्म कर दिया—'मुकद्दमा वापिस लेकर तुरन्त ही छोटे-बडे दोनो मजिस्ट्रेटो को शान्त करना होगा।

नायब साहब को लेकर जमीदार कुछ फल मूल, शीतलभोग का उपहार ले ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट के निवास पर पहुँचकर हाजिर हुए। साहब को बतलाया—साहब के नाम मुकद्दमा चलाना शुरू से उनके स्वभाव विरुद्ध था, केवल शशिभूषण नामक गाँव का एक महामूर्ख, बेवकूफ नया-वकील उन्हे एक प्रकार से न बताते हुए, ऐसा मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठा है।' साहब शशिभूषण के प्रति अत्यन्त विरक्त एव नायब के प्रति बडे सन्तुष्ट हुए, नाराजी के दिमाग मे नायब बाबू को 'डण्ड बैठक' लगवाने से व 'दुखी' थे। साहब बगला भाषा की परीक्षा मे पुरस्कार प्राप्त करके जनसाधारण से अच्छी भाषा म वार्तालाप करते रहते है।

नायब ने कहा—माता पिता कभी नाराज होकर दण्ड भी दे देते हैं, कभी स्नेह करके गोद मे खीच लेते हैं, इसमे सन्तान को अथवा माता पिता को दुःख मानने का कोई कारण नही है।

अन्त मे, ज्वाइन्ट साहब के नौकर चाकरो का यथायोग्य पारितोषिक करके हरकुमार के मुँह से दौरा मजिस्ट्रेट ने शशिभूषण की उद्दण्डता की बात सुनकर कहा—'मुझे भी आश्चर्य हो रहा था कि मैं नायब बाबू को सदा भला आदमी ही जानता रहा हूँ, वे सब बातो को मुझे पहले न बताकर, चुपचाप फैसला न करके, अचानक मुकद्दमा चला बैठेंगे यह कैसी असम्भव घटना है? अब समझ रहा हूँ।'

अन्त मे नायब से पूछा—शशि ने कांग्रेस को सहयोग दिया है या नहीं? नायब ने अम्लान मुख से कहा—'हाँ।'

साहब अपनी साहबी-बुद्धि से स्पष्ट समझ गये, यह सब कांग्रेस की ही चाल है। एक बखेडा खड़ा करके, 'अमृत बाजार पत्रिका' में लिख

लिखकर, गवनमेन्ट के साथ खटपट करने के लिए काग्रेस के छोटे छोटे चेले लुक्ना के समान चारो ओर मौके की तलाश करते रहते हैं, इन सब छोटे छोटे काटो को एकदम नष्ट करके फेंक देने के लिए मजिस्ट्रेटो के हाथ मे अधिक कडे अधिकार नही दिये गये,' वह कर साहब ने गवनमेन्ट (अँग्रेजी सरकार) को अत्यन्त दुबल गवनमेन्ट कहकर मन ही मन धिक्कार दिया। परन्तु काग्रेस वाले शशिभूषण का नाम मजिस्ट्रेट के मन मे बस गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

ससार के बडे-बडे मामले जिस समय प्रबलरूप से अकुरित होते होते रहते है उस समय छोटे छोटे मामले भी क्षुधित, क्षुद्र जडो को लेकर ससार के ऊपर अपने अधिकार का विस्तार करने मे नही चूकते।

शशिभूषण जब इस मजिस्ट्रेट के हँगामे को लेकर विशेष व्यस्त था, जिस समय बडे-बडे पोथी पत्रो से कानून का उद्धार कर रहा था, मन-ही मन वक्तृता (बहस) परसान चढा रहा था, काल्पनिक गवाहो से जिरह करने जा बैठता था और वास्तविक अदालत के जनसमूह के दृश्य एव युद्ध-पर्व के भावी पर्वाध्यायो को मन मे लाकर क्षण-क्षण पर कम्पित और पसीने पसीने हो उठता था, उस समय उसकी छोटी छात्रा अपने छिन्नप्राय चारु पाठ एव स्याही पुती लिखने की कॉपी, बगीचे से कभी फूल कभी फल, माता के भण्डार स किसी दिन आचार किसी दिन नारियल के मिष्ठान्न, किसी दिन पत्ते म लिपटा केतकी की केशर स सुगंधित घर का बना कत्था लाकर नियमित समय मे उसके दरवाजे पर आ उपस्थित होती थी।

पहले कुछ दिनो तक देखा, शशिभूषण एक चित्र रहित बडे कठोर से (भारी) ग्रथ को खोलकर अन्यमनस्कभाव से पन्ने उलट रहा है, वह मन लगाकर पाठ कर रहा हो यह भी नही जान पडता था। अन्य

किसी समय शशिभूषण जिन पुस्तकों को पढता, उनमे से कोई न कोई अश गिरिबाला को भी समझाने की चेष्टा करता था, परन्तु इस स्थलकाय काली जिल्द की पुस्तक मे से गिरिबाला को सुनाने योग्य क्या दो बातें भी नही हैं। वे न हो परन्तु क्या इसी से यह पुस्तक इतनी बडी हो गई और गिरिबाला क्या इतनी ही छोटी है ?

पहले तो गुरु के मनोयोग को आकर्षित करने के लिए गिरिबाला ने गा-गा कर, हिज्जे करके, वेणी-सहित शरीर के उत्तराध को जोर जोर से *हिला हिला कर उच्चस्वर से स्वय ही पढना आरम्भ कर दिया।* देखा, उससे विशेष फल नही हुआ। काली मोटी पुस्तक के ऊपर मन ही मन अत्यन्त नाराज हो गई। उसे एक कुत्सित, कठोर, निष्ठुर मनुष्य की भांति देखने लगी। यह पुस्तक, जो गिरिबाला की बालिका कहकर पूर्णरूपेण अवज्ञा कर रही है, वह जसे उसके प्रत्येक दुर्बोध पृष्ठो मे दुष्ट मनुष्य के मुख की भांति आकार धारण कर, चुपचाप प्रकट होने लगी। उस पुस्तक को यदि कोई चोर चुरा कर ले जाय तो उस चोर को वह अपनी माता के भण्डार से सम्पूर्ण केवडे से सुवासित कत्थ की वस्तुएँ चुराकर पुरस्कार मे दे सकती है। उस पुस्तक के विनाश के लिये उसने मन ही मन देवता के समीप जो सभी असगत एव असम्भव प्राथनायें की, उन्हे देवता ने नही सुना एव पाठको को सुनाने की कोई आवश्यकता नही दीखती।

तब व्यथित-हृदय बालिका ने दो एक दिन चारपाठ हाथ मे लेकर गुरु के घर मे जाना बन्द कर दिया। एव उन दो एक दिनो के बाद इस विच्छेद के फल की परीक्षा करके देखने के लिए उसने दूसरे बहाने से शशिभूषण के घर के सामने सडक पर आकर कटाक्षमात्र करके देखा, शशिभूषण उस काली पुस्तक को पटककर, अकेला खडा हो, हाथ हिलाकर लोहे की सलाखा के प्रति विदेशी भाषा मे वक्तृता का प्रयोग कर रहा है। लगता था विचारक (मजिस्ट्रेट) के मन को किस प्रकार गलायगा (असर डालेगा), इस लोहे की सलाखो के ऊपर उसकी परीक्षा हो रही है। ससार से अनभिज्ञ ग्रन्थ-बिहारी शशिभूषण की धारणा

थी कि प्राचीनकाल म डिमस्थनीज, सिसिरो, बाक, शेरिडन आदि वाग्मीगण वाक्य-बल से जो सब असामान्य काय कर गये हैं—जिस प्रकार शब्दवेधी वाण-वर्षा द्वारा अन्याय को छिन्न विच्छिन्न-अत्याचार को लाँछित एव अहकार को धूलिशायी कर गये हैं, आज दूकानदारी सौदेबाजी के दिना मे भी वह असम्भव नही है। प्रभुत्व पद गर्वित उद्धत अँग्रेज को किस प्रकार वह ससार के समक्ष लज्जित और अनुतप्त करेगा, तिलकुचि ग्राम के जीण क्षुद्र घर मे खडे होकर शशिभूषण उसी की चर्चा कर रहा था। आकाश के देवता सुनकर हँस रहे थे अथवा उनके देवचक्षु अश्रु सिक्त हा रह थ, इसे कौन कह सकता है ?

अस्तु, उस दिन गिरिवाला उस दृष्टि-पथ म नही पडी, उस दिन बालिका के अचल मे जामुन नही थे, पहले एक बार जामुन की गुठली फेंकत हुए पकडे जाने से इस फल के बारे मे वह अत्यन्त सकुचित थी। यही क्यो, शशिभूषण यदि किसी दिन निरीह भाव से पूछता—'गिरि ! आज जामुन नही हैं ?' वह उस गूढ उपहास समझकर क्षोभ सहित 'जाओ !' कहकर हटाती हुई भाग जाने का उपक्रम करती। जामुन की गुठलिया के अभाव मे आज उस एक कौशल का आश्रय लेना पडेगा। सहसा दूर की ओर दृष्टिपात कर बालिका उच्चस्वर से कह उठी, 'स्वण बहिन ! तुम जाओ मत मैं अभी आती हूँ।'

पुरुप पाठक मन मे सोचेंगे कि बात स्वणलता नामक किसी दूरवर्त्तिनी सहेली को लक्ष्य करके ही गई है, परन्तु पाठिकायें सहज ही समझ जायगी कि दूर कोई नही था, लक्ष्य बहुत पास था। परन्तु हाय, अन्धे पुरुप के प्रति वह लक्ष्य भ्रष्ट हो गया। शशिभूषण ने सुन नही पाया हो, सो नही है वह उसके मम को ग्रहण नही कर सका। उसने मन मे समझा, बालिका सचमुच ही खेल के लिए उत्सुक है—एव उस दिन उसे खेल से हटाकर, अध्ययन की ओर आकर्षित करके बुलाने का उस अध्यवसाय नही था, कारण वह भी उस दिन किसी हृदय की ओर लक्ष्य करके तीक्षण शर सन्धान कर रहा था। बालिका के छोटे हाथों

का सामान्य लक्ष्य जिस प्रकार व्यर्थ हो गया, उसके शिक्षित-हाथों का महान लक्ष्य भी उसी प्रकार व्यर्थ हो गया, पाठकों को यह बात पहले ही ज्ञात हो चुकी है।

जामुन की गुठलियों में एक यही गुण है कि, एक-एक करके अनेकों फेंकी जा सकती हैं, चार के निष्फल हो जाने पर अन्तत पाँचवी ठीक स्थान पर जा लगती है। परन्तु 'स्वर्ण' हजार काल्पनिक हो, उसे 'अभी आई' आशा देकर अधिक देर तक ठहराया नहीं जा सकता। ठहरे रहने पर 'स्वर्ण' के अस्तित्व के सम्बन्ध में लोगों को स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अस्तु, वह उपाय जब निष्फल हो गया, तब गिरिबाला को अविलम्ब चले जाना पड़ा। तथापि, स्वर्ण नामक किसी दूर बड़ी हुई सहेली का संग प्राप्त करने की अभिलाषा आन्तरिक होने पर जिस शीघ्रतापूर्वक उत्साह के साथ पाँवों को बढ़ाना स्वाभाविक होता, गिरिबाला की चाल से वह दिखाई नहीं दिया। वह (चाल) जैसे अपना पीछे से अनुभव करने की चेष्टा कर रही थी कि पीछे से कोई आ रहा है या नहीं, जब निश्चित रूप से जान गई कि कोई नहीं आरहा है, तब आशा के अन्तिम क्षीणतम भग्नांश को लेकर एक बार पीछे फिरकर देखा और किसी को न भी देखकर उसने क्षुद्र आशा एवं शिथिल पत्र चारुपाठ के टुकड़े टुकड़े कर मार्ग पर बिखेर दिये। शशिभूषण ने उसे जो कुछ विद्या दी थी, उसे वह किसी प्रकार लौटा पाती तो शायद परित्यक्त जामुन की गुठलियों की भाँति उस सबको शशिभूषण के दरवाजे के सम्मुख जोर से पटककर चली आती। बालिका ने प्रतिज्ञा की, दूसरी बार शशिभूषण से भेंट होने से पूर्व वह सब लिखा-पढ़ी भूल जायेगी, वह जो कुछ प्रश्न पूछेगा, उसका कोई भी उत्तर नहीं देगी। एक का-एक-का-एक का भी नहीं। तब! तब शशिभूषण अत्यन्त छकेगा।

गिरिबाला के दोनों नेत्रों में जल भर आया। पढ़ाई भूल जाने पर शशिभूषण की कैसी तीव्र अनुताप का कारण बनेगी, इसे सोचकर

वह पीडित हृदय से कुछ सान्त्वना प्राप्त कर सकी, एव केवलमात्र शशि भूषण के दोष से लिखी पढ़ी भूली हुई वह हतभागिनी भावी गिरिबाला की कल्पना कर अपने स्वय के प्रति करुणा से ओत प्रोत हो उठी। आकाश मे मेघ घिरने लगे, वर्षाकाल मे ऐसे मेघ प्रतिदिन हुआ करते हैं। गिरिबाला सडक के किनारे एक वृक्ष की ओट मे खडी होकर अभिमान मे सिसक सिसक कर रोने लगी, ऐसा अकारण रोना प्रतिदिन कितनी लडकियां रोया करती है। उसके भीतर ध्यान देने योग्य विषय कुछ भी नही था।

छटा परिच्छेद

शशिभूषण की कानून-सम्बन्धी-खोज एव वक्तता चर्चा किस कारण व्यर्थ होगई वह पाठको से छिपी नही है। मजिस्ट्रेट के नाम मुकद्दमा अकस्मात समाप्त हो गया। हरकुमार अपने जिले के बच मे आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हो गया। एक मली चपकन और तेल से भीगी पगडी पहिनकर हरकुमार आजकल प्राय ही जिले मे जाकर साहबो को नियमित रूप से सलाम कर आता है।

शशिभूषण की उस काली मोटी किताब के प्रति इतने दिना बाद गिरिबाला के अभिशाप ने फलना आरम्भ किया। वह एक अँधेरे कोने मे निवासित होकर अनादृत, विस्मृत भाव से धूलि की पर्त इकटठी करने मे प्रवृत्त होगई। परन्तु उसका अनादर देखकर जो बालिका आनन्द प्राप्त करेगी वह गिरिबाला कहाँ है?

शशिभूषण जिस दिन पहले पहल कानून की किताबो को बन्द करके बैठा, उसी दिन अचानक स्मरण मे आया—गिरिबाला नहीं आती है। मन को लगने लगा, एक दिन उज्ज्वल प्रभात मे गिरिबाला अचल भरकर नवीन वर्षा से आर्द्र बकुलपुष्पो को लाई थी। उसे देखकर भी जब उसने पुस्तक से दृष्टि नही हटाई, तब उसके उच्छवास मे सहसा बाधा पड गई थी। वह अपने अचल मे अटके हुए एक सुई डोरे को बाहर

निकालकर मस्तक झुकाए एक एक फूल लेकर माला गूथन लगी, माला बहुत धीरे धीरे गूथी गई, बडी देर मे समाप्त हुई अबेर होगई, गिरिबाला के घर लौटने का समय हो गया तो भी शशिभूषण का पढना समाप्त नही हुआ था। गिरिबाला माला को तख्तपोश के ऊपर रखकर म्लानभाव से चली गई थी। याद आया, उसका अभिमान प्रतिदिन किस प्रकार घनीभूत हो उठा, कब वह उसके (शशिभूषण के) घर म प्रवेश न करके, घर के सामने वाले माग पर दिखाइ दी और चली गई, अन्त मे कब से बालिका ने उस माग पर आना भी बन्द कर दिया, उसे भी तो आज कुछ दिन होगये। गिरिबाला का अभिमान तो इतने दिन तक स्थायी नही रहता। शशिभूषण एक दीघ निश्वास छोडकर, हतबुद्धि, कमहीन की भाति दीवाल से पीठ लगाकर बैठा रहा। क्षुद्र छात्रा के न आन से उसके पाठय ग्रन्थ अत्यन्त नीरस हो उठे। पुस्तकें खीच खीच कर लेना, दो चार पन्ने पढकर फेंक देनी पडती। लिखते लिखते क्षण प्रतिक्षण चकित होकर माग की ओर, दरवाजे की तरफ, प्रतीक्षापूण दृष्टि विक्षिप्त हो उठती एव लिखना छूट जाता।

शशिभूषण को आशङ्का हुई गिरिबाला बीमार हो गई होगी। गुप्त रूप मे खोज करने पर ज्ञात हुआ, यह आशका निमूल है। गिरिबाला आजकल अब घर से बाहर नही निकलती। उसके लिए वर निश्चित हो चुका है।

गिरि ने जिस दिन चारुपाठ के फटे हुए टुकडो को गाँव के पङ्किल मार्ग पर फेंक दिया था, उसके दूसरे दिन उषाकाल मे छोटे से अचल म विचित्र उपहार एकत्रित कर, तेज चाल मे, घर से निकल कर बाहर आ रही थी। अत्यन्त उष्णवायु के कारण निद्रा हीन रात्रि को बिताने के बाद हरकुमार सवेरे से ही बाहर बैठे हुए शरीर उघाडे तम्बाकू पी रहे थे। गिरि से पूछा—'कहाँ जा रही है?' गिरि ने कहा—'शशि दादा के घर।' हरकुमार ने धमकाते हुए कहा—'शशि दादा के घर जाना नही होगा, घर जा,' यह कहकर भावी श्वसुर के घर मे

निवास करने वाली वय प्राप्त कन्या की लज्जा के अभाव के सम्बन्ध में बहुत तिरस्कार किया। उसी दिन से उसका बाहर निकलना बन्द होगया इस बार फिर उसे अभिमान भग करने का अवसर नही मिला। आम, पापड, सुगन्धित कत्था एव नीबू का अचार भण्डार में यथास्थान लौट गये। वर्षा होने लगी, बकुलपुष्प झरने लगे। वृक्षो पर लदे अमरूद पक उठे एव डालिया से टूटे हुए पक्षिया की चोच से क्षत पके हुए काले जामुन वृक्ष के नीचे प्रतिदिन जमा होने लगे। हाय, वह छिन्नप्राय चारुपाठ भी अब नही है।

सातवाँ परिच्छेद

गाँव मे गिरिबाला के विवाह की जिस दिन शहनाई बज रही थी, उस दिन अनिमन्त्रित शशिभूषण नाव करके कलकत्ते की ओर जा रहा था।

मुकद्दमा उठा लेन के समय से हरकुमार शशि को विष दृष्टि से देखने लगे थे। कारण उन्होने मन ही-मन स्थिर किया था कि शशि उन्हे उन्हे अवश्य ही घृणा करता है। शशि के मुख और नत्रो के व्यवहार म वे अपने सहस्रा काल्पनिक चिन्ह देखने लगे। गाव के सभी लोगो को उनके अपमान का वृत्तान्त क्रमश भूलता जा रहा है, केवल शशिभूषण अकेला ही उस बुरी स्मृति को जगाये हुए है—ऐसा सोचकर वे उसे दोनो आँखो से देख नही सकते थे। उसके साथ साक्षात्कार होने मात्र से उनके अन्त करण म एक सलज्ज सङ्कोच एव उसी के साथ प्रबल क्रोध का सचार हो उठता था। शशि को गाँव छुडवाना होगा—कहकर हरकुमार प्रतिज्ञा कर बठे थे।

शशिभूषण जसे व्यक्ति को गाव छुडवा देने का काम उतना कठिन नही है। नायब महाशय का अभिप्राय बहुत जल्द ही सफल हो गया। एक दिन प्रात काल पुस्तको का बोझ एव दो चार टीन के बक्सा

को साथ लेकर शशि नौका पर चढा। गाँव के साथ उसका जो एक सुख का बंधन था, वह भी आज समारोह के साथ-साथ समाप्त हो रहा था। सुकोमल बंधन ने कितने दृढभाव से उसके हृदय को बाध रक्खा था। इसे वह पहले सम्पूर्ण रूप से नही जान पाया था। आज जब नाव छोड दी गई, गाँव के वृक्षो की चोटियाँ अस्पष्ट एव उत्सव की वाद्यध्वनि क्षीणतर हो आई, तब सहसा आसुओ को भाप से हृदय ने उफन कर, उसके कण्ठ को रुद्ध कर लिया, रक्तोच्छ्वास वेगपूर्वक मस्तक की शिराओ को खीचने लगा एव विश्व ससार के समस्त दृश्य छाया निर्मित माया-मरीचिका की भाँति अस्पष्ट प्रतीत होने लगे।

प्रतिकूल वायु अत्यन्त वेग से बह रही थी, इसलिए स्रोत (बहाव) अनुकूल होने पर भी नौका धीरे धीरे अग्रसर हो रही थी। इसी समय नदी के बीच एक घटना घटी, जिसने शशिभूषण की यात्रा मे व्याघात विघ्न डाल दिया।

स्टेशन घाट से सदर महकमा तक एक नई स्टीमर लाइन हाल ही मे खुली थी। वही स्टीमर स शब्द, पख सचालन स लहरो को उठाता हुआ उसी ओर आ रहा था। जहाज मे नई लाइन के अल्पवयस्क मैनेजर साहब एव अल्पसख्यक यात्री थे। यात्रियो मे शशिभूषण क गाव से भी कुछ लोग चढे थे।

एक महाजन की नाव कुछ दूर से इस स्टीमर के साथ बाजी लगाकर चलने की चेष्टा कर रही थी कभी बीच बीच मे 'पकडा-पकडा' कर रही थी, कभी बीच-बीच मे पिछड जाती थी। माझी को क्रमश होड लग गई। उसने पहले पाल के ऊपर दूसरा पाल एव दूसरे पाल के ऊपर छोटा सा तीसरा पाल तक चढा दिया। वायु के वेग से लम्बा मस्तूल सामने की ओर झुक गया एव विदीर्ण तरग-राशि अट्टहासपूर्ण कल-स्वर मे नौका के दोनो ओर उन्मत्त भाव से नृत्य करने लगी। नौका तब बेलगाम घोडे की भाति छूट चली। एक जगह स्टीमर का मार्ग कुछ टेढा था, उस स्थान पर जरा सी राह पाकर नौका स्टीमर को पीछे

छोड गई। मैनेजर साहब आग्रहपूर्वक रेलिंग के ऊपर झुके हुए इस प्रतियोगिता का देख रहे थे। जब नौका अपने पूणतम वेग को प्राप्त हुई एव स्टीमर का दो एक हाथ पीछे छोड गई, उसी समय साहस ने हठात् एक बन्दूक उठा, बडे पाल को लक्ष्य कर, आवाज कर दी (गोली चलादी)। एक क्षण मे पाल फट गया, नौका डूब गई, स्टीमर नदी के मुहाने मे मुडकर अदृश्य हो गया।

मैनेजर न ऐसा क्यो किया, यह कहना कठिन है। अंग्रेज-नन्दन के मन के भाव को हम बङ्गाली ठीक नही समझ सकते। शायद देसी पाल की प्रतियोगिता को वे सहन नही कर सके, शायद बडे विस्तृत पदार्थ को बन्दूक की गोली द्वारा, नेत्रो की पलको में विदीर्ण करने का एक हिंस्र प्रलोभन था, शायद इस गर्वित नाव के कपडे के टुकडो मे कुछ छेद करके पलभर मे इस नौका-लीला को समाप्त कर देने मे एक प्रबल पैशाचिक हास्यरस था, निश्चितरूप से मालूम नही है। परन्तु यह निश्चित है, अंग्रेज के मन के भीतर एक विश्वास था कि इस मजाक को करने के कारण वह किसी प्रकार का दण्ड पाने याग्य नही है—एव धारणा थी, जिनकी नौका गई है एव सभवत प्राणो का भी सशय है, उनकी मनुष्यो मे गणना नही की जा सकती।

साहब ने जिस समय बन्दूक उठाकर गोली चलाई एवम् नाव डूब गई, उस समय शशिभूषण की 'पान्सि (सवारी की नाव) घटना स्थल के समीप जा पहुँची थी। डूबते हुए व्यापारियो को शशिभूषण ने प्रत्यक्ष देखा। झटपट नौका लेजाकर माँझी और मल्लाहो का उद्धार किया। केवल एक व्यक्ति भीतर बैठा रसोई के लिए मसाला पीस रहा था उसे फिर नही देखा जा सका। वर्षा की नदी बडे वेग से बह रही थी।

शशिभूषण के हृत्पिण्ड मे उत्तप्त रक्त फूटने लगा। कानून की गति अत्यन्त मन्द है—वह एक वृहत् जटिल लोहयन्त्र की भांति है, तौलकर ही वह प्रमाण ग्रहण करती है एव निर्विकार भाव से वह दण्ड का

विभाग कर देती है, उसमे मानव-हृदय का उत्ताप नही है। परन्तु क्षुधा के साथ भोजन इच्छा के साथ उपभोग और रोष के साथ दण्ड का अलग कर देना शशिभूषण को समान रूप से अस्वाभाविक जान पडता था। अनेक अपराध हैं, जिनके प्रत्यक्ष होते ही उसी क्षण अपने हाथ म उनका दण्ड विधान न करने पर अन्तर्यामी विधाता पुरुष जैसे हृदय के भीतर बठकर प्रत्यक्ष देखने वाले को दग्ध करते रहते हैं। उस समय कानून की बात स्मरण करके सात्वना प्राप्त करने मे हृदय को लज्जा का बोध होता है। परन्तु मशीन का कानून एव मशीन का जहाज मैनेजर को शशिभूषण के पास से दूर ले गया। उससे ससार का और कौन कौन सा उपकार हुआ, नही कहा जा सकता, परन्तु उस यात्रा म निस्सन्देह शशिभूषण को भारतवर्षीय प्लीहा ने रक्षा पाली थी।

माझी मल्लाह जो बच गये थे, उन्ह लेकर शशि गाँव को लौट आया। नौका मे पाट लदा हुआ था, उस पाट का उद्धार करने के लिए आदमी नियुक्त कर दिए गय एव माझी को मैनेजर के विरुद्ध पुलिस ने दरख्वास्त देने का अनुरोध किया।

माझी किसी प्रकार राजी नही हुआ। उसने कहा, 'नौका तो डूब गई, अब स्वय को नही डुबा सकूगा।' प्रथम तो पुलिस को दशनी (भेंट) देनी होगी, उसके बाद काम-काज, आहार निद्रा त्याग कर अदालत मे घूमना पडेगा तत्पश्चात् साहब के नाम नालिश करके किस झझट मे पडना होगा और क्या नतीजा निकलेगा, उसे भगवान ही जानें। अन्त मे उसने जब जाना, शशिभूषण स्वय ही वकील है, अदालत का खर्चा वही उठायेगा एव मुकद्मे के भविष्य मे हर्जाना पाने की पूण सभावना है, तब राजी हो गया। परन्तु शशिभूषण के गाँव के लोग जो स्टीमर मे उपस्थित थे, उन्होन किसी भी प्रकार गवाही नही देनी चाही। उन्होंने शशिभूषण से कहा, 'महाशय, हमने कुछ भी नहीं देखा, हम जहाज के पिछले हिस्से मे थे मशीन की घट्-घट् एव जल के

कलू-कल् शब्द मे उस जगह से बन्दूक की आवाज सुनने की कोई सम्भावना नही थी।

देश मे लोगो को आन्तरिक धिक्कार देकर शशिभूषण ने मजिस्ट्रेट मे यहा मुकद्दमा चला दिया।

गवाह की कोई आवश्यकता नही हुई मैनेजर ने स्वीकार किया कि उसने बन्दूक चलाई थी। कहा, आकाश मे एक बगुला की पक्ति उड रही थी, उन्ही के लिए निशाना किया गया था। स्टीमर उस समय पूरी रफ्तार से चल रहा था एव उसी समय नदी के मुहाने मे प्रविष्ट हुआ था। अस्तु वह जान भी नही पाया, कौआ मरा या बगुला या नौका डूब गई। अन्तरिक्ष मे और पृथ्वी पर इतनी शिकार की वस्तुएँ हैं कि कोई बुद्धिमान व्यक्ति इच्छापूवक (जान बूझकर) 'डर्टीरग' अर्थात् मैले कपडे के टुकडे के ऊपर धेले पैसे के मूल्य की छोटी गोली का भी अपव्यय कर सकेगा।

बेकुसूर सिद्ध हो, छुटकारा पाकर मैनेजर साहब चुरुट फूकते फूकते क्लब मे 'व्हिस्ट' खेलने चले गए जो व्यक्ति नाव के भीतर मसाला पीस रहा था नौ मील दूर उनकी मृत देह बहती हुई आ लगी एव शशिभूषण हृदय की जलन लिए अपने गाव मे लौट आया।

जिस दिन लौटकर आया उस दिन नौका सजाकर गिरिबाला को ससुराल मे ले जाया जा रहा था। यद्यपि उसे किसी ने बुलाया नही था, तथापि शशिभूषण धीरे धीरे नदी के तट पर जा उपस्थित हुआ। घाट पर लोगो की भीड थी वहाँ न जाकर कुछ दूर आगे पहुँचकर खडा हो गया। नौका घाट छोडकर जब उसके सामने से चली गई, तब चकित की भाँति एक बार देख सका, माथे पर घूघट खीचे नववधू सिर झुकाए बैठी थी। बहुत दिनो से गिरिबाला की आस थी कि गाँव छोडकर जाने से पहले किसी प्रकार एक बार शशिभूषण से साक्षात्कार हो, परन्तु आज वह जान भी नही सकी कि उसके गुरु समीप ही तट पर खडे हुए हैं। एक बार उसने मुँह उठाकर भी नही देखा, केवल नि शब्द रुदन मे

उसके दोनो कपोलो पर बहता हुआ अश्रुजल झर-झर कर गिरने लगा।

नौका क्रमश दूर जाकर अदृश्य हो गई। पानी के ऊपर सवेरे की धूप झिक् झिक् करने लगी, समीप ही आम की डाली पर एक पपीहा उच्छवसित कण्ठ से वारम्बार गीत गाकर मन के आवेग को किसी प्रकार समाप्त नही कर सका, पार जाने वाली नाव सवारियो का बोझ लिए हुए पार जाने लगी, स्त्रियां घाट पर पानी लेने के लिए आकर उच्च कल-स्वर मे गिरि की ससुराल-यात्रा की आलोचना (चर्चा) करने लगी, शशिभूषण चश्मा खोल (हटा) कर नेत्र को पोछ, उसी सडक के किनारे वाले उसी जगले के बीच उसी छोटे से घर मे जाकर प्रविष्ट हुआ। हठात् एक बार मन को लगा जैसे गिरिबाला का कण्ठ स्वर सुनाई पडा, शशिदादा !'—कहाँ है रे, कहाँ है ? कही भी नही ! वह घर मे नही है, वह सडक पर नही है, वह गाँव मे नही है—उसके अश्रुजल से अभिषिक्त हृदय के भीतर ही है।

आठवा परिच्छेद

शशिभूषण ने दुबारा चीज-वस्त बाधकर कलकत्ते की ओर यात्रा की। कलकत्ते मे कोई काम नही, वहाँ जाने का कोई विशेष उद्देश्य नहा, इसीलिए रेल माग से न जाकर नदी माग से जाना स्थिर किया।

उस समय पूर्ण वर्षा मे बङ्गाल देश के चारो ओर छोटे बडे टेढे मेढे सहस्रो जलमय (पानी के भीतर) जाल फैले पडे थे। सरस, श्यामल बङ्गभूमि की शिरा उपशिरायें परिपूर्ण होकर, पेड-पौधा, तृण-गुल्म, झाड-झखाड, धान-पाट, ईख से दसा दिशाओ मे उन्मत्त यौवन की प्रचुरता जैसे एकबारगी उद्दाम उच्छ खल हो उठी थी।

शशिभूषण की नाव उन समस्त सकीण वक्र जलस्रोतो के बीच से चलने लगी। पानी उस समय तट के साथ समतल हो गया था।

काश-वन, शर वन एव स्थान स्थान पर खेत जल मग्न हो गए थे। गाँव की मढ़ें बाँस के झाड और आम के बगीचे एकदम पानी के अव्यवहित किनारे पर आकर खड़े हो गये थे—देव कन्याओ ने जैसे बँगाल-देश के तरु-मूल-वर्ती आल-बालो (घास पात) को जल सिंचन से परिपूर्ण कर दिया था।

यात्रा के प्रारम्भिक समय म स्नान चिक्वण (सद्य-स्नाता) वनश्री धूप से उज्जवल हास्यमय थी, थोडी देर मे ही बादल घिरकर वर्षा आरम्भ हो गई। उस समय जिधर भी दृष्टि जाती, वही दिशा विपण्ण एव अपरिच्छिन्न दिखाई देने लगती। बाढ आने पर गायें जिस प्रकार जल वेष्टित, मलिन, पंकिल, संकीण गोष्ठ प्रागण (गौशाला) मे भीड किए, करुण-नेत्र एव सहिष्णुभाव से खडी हुई श्रावण की वर्षा धारा मे भीगती रहती हैं बँगाल-देश अपने कदम पिच्छिल घन सिक्त रुद्ध-जगलो के बीच मूक विपण्ण मुख से वैसे ही पीडित भाव से अवि श्राम भीगने लगा। किसान लोग मस्तक पर 'टोका' (ताड के पत्ता से बनी छतरी) लगाकर बाहर निकल पडे स्त्रियाँ भीगती भीगती बदली की शीतल वायु स सकुचित हो एक झोपडी से दूसरी झोपडी के भीतरी भाग मे गृह-काय के लिए आ जा रही थी और फिसलन भरे घाट पर अत्यन्त सावधानी से पाव रखकर भीगे कपडो से पानी भर रही थी, एव गृहस्थ पुरुष चबूतरे पर बैठे हुए तम्बाकू पी रहे थे, बहुत जरूरी काम होने पर ही कमर से चद्दर लपेटकर हाथ मे जूता लिए, सिर पर छतरी लगाए बाहर निकलते थे—अबला स्त्रियो के माथे पर, इस धूप दग्ध वर्षा प्लावित बँगदेश की सन्तान पवित्र प्रथा से, छाता नही लगता।

वर्षा जब किसी प्रकार नही थमी, तब बन्द नाव के भीतर बैठे रहने से विरक्त होकर शशिभूपण ने पुन रेल माग से जाना ही स्थिर किया। एक जगह एक प्रशस्त मुहाने जैसे स्थान पर आकर शशिभूपण नाव बँधवाने (रुकवाने) का उद्योग करने लगा।

लँगडे का पाव गडढे मे पडता है—यह केवल गडढे का ही दोष नही, लँगडे के पजे की भी गिरने की ओर एक विशेष झोक होती है। शशिभूषण ने उस दिन इसका एक प्रमाण दिया।

दो नदियो के मुहाने की ओर बाँस बाँधकर मछुओ ने बहुत बडा जाल फैला रक्खा था। केवल एक बगल से नावो के आने जाने का स्थान रख छोडा था। बहुत दिनो से वे लोग इस काय को करते थे एव उसके लिए टैक्स भी देते थे। दुर्भाग्यवश इस वष, इसी माग से अचानक जिले के पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट का शुभागमन हुआ। उनके बोट को आते हुए देखकर मछुओ ने पहले से ही बगल वाल माग का निर्देश करते हुए उच्च-स्वर से सावधान कर दिया। परन्तु मनुष्य रचित किसी भी बाधा के प्रति सम्मान प्रदशन कर, घूमकर जान का, साहब के माझियो को अभ्यास नही था। उन्होंने उसी जाल के ऊपर होकर बाट चला दिया। जाल के नीचे झुककर बोट का माग छोड दिया, परतु उसकी पतवार उलझ गई। कुछ विलम्ब एव प्रयत्न से पतवार छुडा ली गई।

पुलिस-साहब ने अत्यन्त गरम एव रक्तवण होकर बोट रुकवा दिया। उनकी मूर्ति देखते ही बेचारे मछुए ऊर्ध्वश्वास से (सास रोक कर) भाग गये। साहब ने अपने मल्लाहो से जाल को काटकर फेंक देने का आदेश दिया। उन्हान उस सात आठ सौ रुपये के बडे जाल को काट कर, टुकडे टुकडे कर डाला।

जाल के ऊपर गुस्सा उतारकर अत म मछुओ को पकड लाने का आदेश हुआ। कान्स्टेबल भागे हुए चार मछुआ की खोज न पाकर जिन चार व्यक्तियो को अपने हाथ के पास पाया, उन्ही को पकड लाए। वे अपने को निरपराध कहकर, हाथ जोडे हुए हा हा खाने लगे। पुलिस-बहादुर जब उन बन्दियो को साथ ले चलने का हुक्म दे रहे थे, उसी समय चश्माधारी शशिभूषण झटपट एक कुर्त्ता पहिन, उसमे बिना बटन लगाये ही चप्पलों का चट्-चट् शब्द करता हुआ पुलिस की बोट के सामने आ उपस्थित हुआ। काँपते हुए स्वर मे कहा—'सर' मछुओ का

जाल काटने एव इन चार व्यक्तियो को पीडित करने का आपको कोई अधिकार नही है।'

पुलिस के बडे अधिकारी द्वारा उससे हिन्दी भाषा मे एक विशेष अपमानपूर्ण बात कही जाते ही वह एक क्षण मे ही कुछ ऊँचाई से बोट के भीतर कूदकर एकदम साहब के ऊपर स्वय को डाल बैठा। बालक की भाँति, पागल की भाति मारने लगा।

उसके बाद क्या हुआ, वह उसने नही जाना। पुलिस के थाने मे जब जगकर उठा, तब कहने मे सकोच लगता है, जैसा व्यवहार प्राप्त हुआ था, उसस मानसिक सम्मान अथवा शारीरिक आराम नही जान पड़ा।

नवाँ परिच्छेद

शशिभूषण के पिता ने वकील-बैरिस्टर लगाकर पहले तो शशी को हवालात से जमानत पर छुडाया। तदुपरान्त मुकद्दमे की तयारिया चलने लगी।

जिन मछुओ का जल नष्ट हुआ था, वे शशिभूषण के एक परगने के अन्तगत, एक जमीदार के आधीन थे, विपत्ति के समय कभी-कभी शशी के पास व सब कानूनी सलाह लेने भी आते थे। जिन लोगो को साहब बोट मे पकडकर ले आये थे, वे भी शशिभूषण के अपरिचित नही थे।

शशि ने उन लोगा को गवाह बनाने के लिए बुलवाया। वे भय से अस्थिर हो उठे। स्त्री-पुत्र परिवार के साथ जिन्हें ससार-यात्रा का निर्वाह करना होता है पुलिस के साथ विवाद करने पर वे कहाँ जाकर छुटकारा पायेंगे। एक से अधिक प्राण किस के शरीर मे हैं। जो नुक-सान होना था वह तो हो ही गया था, अब फिर गवाही का सफीना

लेना—यह कसी मुश्किल है ! सबने कहा—'ठाकुर, तुमने ता हम लोगा को बडे झगडे म डाल दिया।'

बहुत कहने-सुनने के बाद उन्होंने सच्ची बात कहना स्वीकार कर लिया।

इसी बीच हरकुमार जिस दिन बैंच मे काम से जिले क साहब को ओर सलाम करने गये, पुलिस-साहब ने हँमकर कहा, 'नायबबाबू, सुना है तुम्हारी रिआया पुलिस के खिलाफ झूठी गवाही देन का तयार हो रही है।'

नायब ने चकित हाकर कहा, 'हा ! यह भी क्या सम्भव हो सकता है। अपवित्र जानवर-जाति के पुत्रा की हड्डियो मे इतनी क्षमता !'

समाचार-पत्र के पाठक परिचित हैं, मुकद्दमे म शशिभूपण का पक्ष जरा भी नहीं टिक सका।

मछुओ ने एक एक करके आकर कहा, 'पुलिस-साहब ने उनके जाल को नही काटा, बोट पर बुलाकर उनका नाम-पता लिख लिया था।'

केवल यही नही, उसके देश के दो चार परिचित लोगो ने गवाही दी कि वे उस समय घटनास्थल पर विवाह की वरयात्रा के उपलक्ष मे उपस्थित थे। शशिभूपण ने जो अकारण ही आगे बढ़कर पुलिस के पहरेदारा के प्रति उपद्रव किया था, उसे उ होने प्रत्यक्ष देखा था।

शशिभूपण ने स्वीकर किया कि गाली खाकर, बोट म घुसकर उसने साहब को मारा था। परन्तु जाल काट देना और मछुओ के प्रति उपद्रव ही उसका मूल कारण था।

ऐसी अवस्था मे जिस न्याय के कारण शशिभूपण न सजा पाई, उमे अयाय नही कहा जा सकता। तो भी सजा कुछ अधिक हा गई। तीन चार अभियोग—आघात, अनधिकार प्रवेश, पुलिस के कतव्य मे बाधा इत्यादि सब बातें उसके विरुद्ध पूरी प्रमाणित हुइ।

गीत की बात क्रमश क्षीणतर अस्फुटतर हो आई, और समझ नही पडी। परन्तु गीत के छन्द ने शशिभूषण के हृदय मे एक आन्दोलन (हलचल) उठा दिया, वह अपने मन मे गुनगुना कर, पद के बाद पद रचना कर जोडता हुआ चला किसी प्रकार जैसे ठहर नही पाया—

मेरे नित्य-सुख लौट आओ!
मेरे चिर-दुख लौट आओ!
मेरे सब-सुख दुख मन्थन धन, हृदय मे लौट आओ!
मेरे चिरवांछित आओ!
मेरे चिरसचित आओ!
ओरे चचल हे चिरन्तन,
भुज-बन्धन म लौट आओ!
मेरे वक्ष मे लौट आओ,
मेरे चक्षु मे लौट आओ,
मेरे शयन मे स्वप्न मे वसन म भूषण मे निखिल भुवन मे आओ!

मेरे मुख की हँसी मे आओ हे,
मेरे दृग के जल मे आओ!
मेरे आदर मे, मेरे छल म,
मेरे अभिमान म लौट आओ!
मेरे सब स्मरण में आओ,
मेरे सब भरम मे आओ—
मेरे धरम-करम, सुहाग-शरम, जनम—मरण म आओ!"

गाडी जब एक चहारदीवारीयुक्त उद्यान मे प्रवेश कर एक दो-मजिली अट्टालिका के सामने खडी हुई, तब शशिभूषण का गीत रुका।

उसने कोई प्रश्न न कर सेवक के निर्देश के अनुसार मकान के भीतर प्रवेश किया।

जिस कमरे मे आकर बैठा उस कमरे मे चारा ओर बडी-बडी काँच

की अलमारियों में विचित्र वर्णों की विचित्र जिल्दो वाली मोटी मोटी पुस्तकें सजी हुई थी। उस दृश्य को देखते ही उसका प्राचीन-जीवन दूसरी बार कारामुक्त हो, बाहर निकल आया। यह सुनहरी पानी से अंकित, अनेक रजित पुस्तकें आनन्द-लोक के भीतर प्रवेश करने के सुपरिचित रत्नखचित सिंहद्वार की भाँति उसे प्रतीत होने लगीं।

टेबुल के ऊपर भी कुछ वस्तुएँ रखी थी। शशिभूषण न अपनी क्षीण दृष्टि से सिर झुककर पढते हुए देखा, एक टूटी हुई स्लेट, उसके ऊपर कुछ पुरानी कापिया, एक छिन्नप्राय धारापात (पहाडे की पुस्तक) कथामाला एव एक काशीरामदास की महाभारत है।

स्लट के काठ के फ्रेम के ऊपर शशिभूषण के हाथ की लिखावट म स्याही से खूब मोटा लिखा था—गिरिबाला देवी। कापियो और पुस्तको के ऊपर भी इसी एक लिखावट का एक नाम लिखा हुआ था।

शशिभूषण कहा आया है, समझ गया। उसके वक्षस्थल मे रक्त स्रोत तरगित हो उठा। खुली हुई खिडकी से बाहर देखा—वहा क्या दिखाई दिया। वही छोटे से बरामदे का घर, वह असमतल ग्राम्यपथ, वही डोरिया के कपडे पहन हुए छोटी सी लडकी। एव वही अपनी शान्तिमय निभृत जीवन यात्रा।

उस दिन का वह सुखी जीवन तनिक भी असामान्य अथवा अत्यधिक नही था, दिन के बाद दिन क्षुद्र कामो म क्षुद्र सुख म अज्ञात भाव से कट जाते थे, एव उसके अपने अध्ययन काय म एक बालिका छात्रा का अध्ययन कार्य तुच्छ घटनाओ मे ही गिना जाने योग्य था, वही छोटी-सी बालिका का छोटा मुख सब कुछ जैसे स्वग की भाँति देश-काल के बाहर एव सीमा से परे रूप मे केवल आकाक्षा राज्य की कल्पना छाया के बीच विराज रहा था। उस दिन की वह सम्पूण छवि एव स्मृति आज के इस वर्षाम्लान प्रभात के आलोक के साथ एव मन के भीतर मृदुगुंजित उस कीतन-गीत के सहित जडित मिश्रित होकर एक प्रकार सगीतमय, ज्योतिमय अपूवरूप धारण कर बैठी। उस अङ्गरा-

वेष्टित, धूलि भरे, कीचड भरे, सकीण ग्राम-पथ पर उसी अनादृत अपित बालिका के अभिमान मलिन मुख की शेष स्मृति जसे विधाता विचरित एक असाधारण आश्चयमय अपरूप अति गम्भीर, अति वेदना परिपूर्ण स्वर्गीय चित्र की भाँति उसके मानस पट पर प्रफुल्लित हो उठी। उसी के साथ कीत्तन का करुण स्वर बजन लगा एव मन को लगा जैसे उसी ग्राम्य बालिका के मुख पर समस्त विश्व हृदय के एक अनिवचनीय दुख ने अपनी छाया डाल रखी है। शशिभूषण दोनो बाँहो म मुँह छिपाकर उस टेबुल के ऊपर उन स्लट पुस्तक-कापियो के ऊपर मुँह रखकर बहुत समय बाद अनेक दिनो के स्वप्न देखने लगा।

बहुत देर बाद कोमल शब्द से चकित हो, मुँह उठाकर देखा, उसके सामन चाँदी के थाल मे फल फूल मिष्ठान्न रखे गिरिबाला समीप ही खडी मौन प्रतीक्षा कर रही थी। उसके मस्तक उठाते ही आभूषण विहीना शुभ्रवसना विधवा वेषधारी गिरिबाला ने उसको नतजानु हो भूमिष्ट प्रमाण किया।

विधवा ने उठकर खडे हो जब शीर्णमुख म्लानवण, भग्न शरीर शशिभूषण की आर सकरुण स्निग्ध नेत्रो से देखा, तभी उसके दोनो नेत्रो से झरकर दोना कपोलो पर बहते हुए आँसू गिरने लगे।

शशिभूषण न उससे कुशल प्रश्न पूछने की चेष्टा की परन्तु भाषा ढूँढे भी नही मिली, निरुद्ध, अश्रुवाष्प ने उसके वाक्य पथ को बल-पूवक अवरुद्ध कर दिया बात और आँसू दोनो ही निरुपायभाव से हृदय के मुख पर कण्ठ के द्वार पर, अवरुद्ध हो गये। वही कीत्तन-मण्डली भिक्षा एकत्र करती-करती अट्टालिका के सामने आकर खडी हो गई एव बार-बार दुहराती हुई गाने लगी—'आओ आओ हे !'

रात में

'डाक्टर ! डाक्टर !'

शरीर मे आग लगादी । इस आधी-

रात मे—

आखें गढाकर देखा हमार जमीदार दक्षिणाचरणबाबू हैं । झटपट उठकर पीठहीन चौकी खीचकर उन्हे बठने को दी एव उद्विग्नभाव से उनके मुँह की ओर देखने लगा । घडी की ओर देखा, उस समय रात के ढाई बजे थे ।

दक्षिणाचरणबाबू ने विवण मुख विस्फारित नेत्रो से कहा, 'आज रात मे फिर उसी प्रकार का उपद्रव आरम्भ हुआ है—तुम्हारी औषधि किसी काम नही आई ।'

मैं कुछ सकोचपूर्वक वाला, 'आपने शायद शराब की मात्रा फिर बढा दी है ।'

दक्षिणाचरण बाबू ने अत्यन्त विरक्त होकर कहा, 'यह तुम्हारा बडा भ्रम है ।

शराव नहीं, आद्योपान्त विवरण सुने बिना तुम वास्तविक कारण का अनुमान नहीं कर सकते ।

आले में छोटी-सी टीन की ढिबरी म्लान भाव से किरासिन तेल द्वारा जल रही थी, मैंने उसे उकसा दिया, थोडा-सा प्रकाश जाग्रत हो उठा एवं बहुत-सा धुआँ बाहर निकलने लगा । धोती के पल्ले को शरीर पर खींचकर एक अखबार का पृष्ठ बिछाकर चौड़े के बक्स पर बैठ गया । दक्षिणाचरणबाबू कहने लगे—

मेरी पहली स्त्री के समान गृहिणी होना अत्यन्त दुर्लभ है । परन्तु उस समय मेरी आयु अधिक नहीं थी, स्वभाव रसिकता अधिक थी, उस पर भी फिर काव्यशास्त्र का भली भाँति अध्ययन किया था, अतः केवल गृहस्थी सँभालने वाली स्त्री से ही मन नहीं भरता था । कालिदास का वह श्लोक प्रायः याद आया करता—

गृहिणी सचिव सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।

परन्तु मेरी गृहिणी के समीप ललित-कला विधि का कोई भी उपदेश काम नहीं करता था एवं सखी भाव से प्रणयसंभाषण किये जाने पर वह हँसी में उडा देती थी । गंगा के स्रोत में जैसे इन्द्र का ऐरावत परेशान हुआ था वैसे ही उसके हास्यभरे मुख के समक्ष बडे बडे काव्य के टुकडे एवं अच्छे-अच्छे आदर सम्भाषण क्षणभर में ही अपदस्थ होकर डूब ही जाते । उसके हास्य में आश्चर्यजनक शक्ति थी ।

उसके बाद, आज चार वर्ष मुझे सांघातिक रोग ने जकड लिया । ओष्ठ व्रण हुआ, ज्वर विकार हुआ मरने जैसा हो गया । बचने की आशा नहीं थी । एक दिन ऐसा हुआ कि डाक्टर जवाब दे गया । तभी मेरे एक आत्मीय ने कहीं से एक ब्रह्मचारी ला उपस्थित किये, उन्होंने गाय के घी के साथ एक जडी निचोडकर मुझे खिलादी । औषधि के गुण से अथवा दैवी की कृपा से उस यात्रा से बच गया ।

रोग के समय मेरी स्त्री ने रात-दिन एक क्षण के लिए भी विश्राम नही किया। उन कितने ही दिनो तक एक अबला स्त्री ने मनुष्य की मामूली शक्ति लेकर, प्राणपण की व्याकुलता सहित, द्वार पर आये हुए यमदूतो के साथ अनवरत युद्ध किया। अपना समस्त प्रेम, समस्त हृदय, समस्त यत्न लगाकर मेरे इन अयोग्य प्राणो को, जसे वक्षस्थल से लगाये हुए शिशु के समान दोनो हाथो से छिपाकर, ढापकर रक्खे रही। आहार नही था, नीद नही थी, ससार मे और किसी के भी प्रति दृष्टि नही थी।

यमदूत तब पराजित बाघ की भाँति मुझे अपनी दाढ म से निकालकर चले गये, परन्तु जाते समय मेरी स्त्री के एक प्रबल थाप (पजा) मार गए।

मेरी स्त्री उस समय गभवती थी, कुछ समय बाद ही उसने एक मृत सन्तान प्रसव की। उसके बाद से उसकी अनेका प्रकार की कठिन बीमारियो का सूत्रपात हुआ। तब मैंने उसकी सेवा आरम्भ कर दी। उससे वह परेशान हो उठी। कहने लगी, आह क्या करते हो! लोग क्या कहगे! इस प्रकार दिन रात तुम मेरे घर मे मत आया-जाया करो।'

जैसे स्वय हवा खा रहा होऊँ, इस तरह से रात म यदि उसके ज्वर के समय उसे पङ्खा झलने के लिए जाता तो एक छीना झपटी का बडा उपक्रम आरम्भ हो जाता। किसी दिन यदि उसकी सुश्रूषा मे मेरे भोजन के नियमित समय स दस मिनट अधिक निकल जाते, तो वह भी अनेको प्रकार की अनुनय, अनुरोध और निहोरे का कारण बन कर खडे हो जाते। तनिक-सी सेवा करने जाते ही वह विरुद्ध हो उठी। वह कहती, 'पुरुषो के लिए इतनी अति अच्छी नही है।'

हमारे उस बरानगर वाले मकान को शायद तुमने देखा है। मकान के सामने ही बगीचा है और बगीचे के सामने ही गङ्गा बहती

है। हमारे मुख्य गृह के नीचे ही दक्षिण की ओर थोडी सी धरती मे मेहदी के पौधा का वेडा लगाकर मेरी स्त्री ने अपने मन के मुताबिक छोटा-सा वगीचा बना दिया था। सम्पूर्ण वगीचे के बीच वह टुकडा अत्यन्त सीधा साधा और नितान्तदेशी-सा था। अर्थात् उसमे गन्ध की अपेक्षा वर्ण की वहार, फूलो की अपेक्षा पत्तो का वैचित्र्य नही था, एव गमलो मे अत्यन्त साधारण वनस्पतियो की बगल मे खपचियो का सहारा लेकर कागज से बनी लाटिन नाम की जयपताका नही फहराती थी। बेला, जुही गुलाव, गन्धराज, करवी एव रजनीगन्धा का प्रादुर्भाव ही कुछ अधिक था। एक विशाल मौलश्री के वृक्ष के नीचे सादा सगमरमर पत्थर का चबूतरा था। स्वस्थ-अवस्था मे वह स्वय उसे दोना समय साफ करती थी। उस स्थान से गङ्गा दिखायी देती थी, परन्तु गङ्गा से नाव मे बैठे हुए बाबू लोग उसे नही देख पाते थे।

बहुत दिनो तक शय्या पर पडी रहने के बाद एक दिन चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की सन्ध्या मे उसने कहा, 'घर मे बन्द रहकर मेरे प्राण घबरा उठे हैं आज एक बार अपने बगीचे मे जाकर बैठूगी।'

मैंने उसे बडे यत्न से धीरे धीरे उसी मौलश्री के वृक्ष के नीचे पत्थर की चौकी पर ले जाकर शयन करा दिया। अपनी ही जाघ के ऊपर उसके मस्तक को उठाकर रख सकता था परन्तु सोचा—उसे वह अद्भुत आचरण कहकर गिनेगी, इसी से एक तकिया लाकर उसके माथे के नीचे रख दिया।

दो एक करके प्रस्फुटित मौलश्री के फूल झरने लगे एव शाखान्तराल से छायाङ्कित ज्योत्सना उसके दुबल मुँह के ऊपर आकर गिरने लगी। चारा दिशाएँ शान्त एव निस्तब्ध थी, उस घनगन्धपूर्ण छायान्धकार म एक ओर चुपचाप बैठकर उसके मुँह की ओर देखते हुए मेरे नेत्रो मे जल भर आया।

मैंने धीरे-धीरे और अधिक समीप जाकर दोनो हाथा से उसके एक उत्तप्त दुबल हाथ को उठा लिया। उसने इस पर कोई आपत्ति नही की। कुछ क्षण इसी भाँति मौन बैठे रहकर मेरा हृदय न जाने कैसा उद्वेलित हो उठा, मैं बोल उठा, 'तुम्हारे प्यार को मैं किसी समय नही भूलूगा।'

तभी ममझा, यह बात कहन की कोई आवश्यकता नही थी। मेरी स्त्री हँस उठी। उस हँसी मे लज्जा थी, सुख था और किंचित् अविश्वास था एव उसमे बहुत परिमाण मे परिहास की तीव्रता भी थी। प्रतिवादरूप मे एक भी बात न कहकर केवल अपनी उसी हँसी के द्वारा जताया 'किसी समय नही भूलोगे, यह कभी सम्भव नही है एव मैं उसकी प्रत्याशा भी नही करती।

इस सुमिष्ट सुतीक्ष्ण हँसी के भय से ही मैंने कभी भी अपनी स्त्री के साथ भली भाँति प्रेमालाप करन का साहस नही किया था। पीठ-पीछे जा सब बातें मन म उदय होती, उसके सामन जाते ही वे सब अत्यन्त निरथक बातें जान पडती। छापे के अक्षरो म जिन सब बातो को पढकर दोनो नेत्रो से बहकर झर-झर धारा मे जल बहने लगता है, उन सब को सामने कहे जाने पर जिस हास्य का उद्रेक होता है उसे आज तक नही समझ सका हूँ।

बाना (बहस) मे वाद प्रतिवाद चलता है, परन्तु हँसी के ऊपर तक नही चलता, इसीलिए चुप रह जाना पडा। ज्योत्सना अधिक उज्ज्वल हो उठी, एक कोकिल क्रमश कुहू कुहू पुकारती हुई अस्थिर हो गई। मैं बैठा-बैठा सोचने लगा, ऐसी चाँदनी रात मे भी क्या पिक-वधू बहरी हो गई है ?

बहुत चिकित्सा होने पर भी मेरी स्त्री की रोग शान्ति के कोई लक्षण देखे नही गये। डाक्टर बोला, 'एक बार परिवतन करके देख लेना अच्छा रहेगा।' मैं स्त्री को लेकर इलाहाबाद चला गया।

इस जगह दक्षिणाबाबू अचानक रुककर चुप हो गये। सन्निग्ध भाव से मेरे मुँह की ओर देखा, तदुपरान्त दोनों हाथ के बीच मस्तक रखकर सोचने लगे। मैं भी चुप बना रहा। ढिबरी मे किरासिन तेल मिट मिट् करके जलने लगा एव निस्तब्ध घर मे मच्छरों का भन् भन् शब्द सुस्पष्ट हो उठा। अचानक मौन भंगकर, दक्षिणाबाबू ने बोलना आरम्भ किया—

वहाँ पर हारान डाक्टर मेरी स्त्री की चिकित्सा करने लगे।

अंत मे बहुत समय एक जैसा बीतने पर डाक्टर ने भी कहा मैंने भी समझा एव मेरी स्त्री ने भी समझा कि उसका रोग अच्छा नही होगा। उसे चिर रुग्ण होकर ही दिन काटने होगे।

तब एक दिन मेरी स्त्री मुझसे बोली, 'जब रोग भी ठीक नही होगा एव शीघ्र ही मेरे मरने की आशा भी नही है, तब और कितने दिन इस जीवन्मृत को लेकर रहोगे। तुम दूसरा विवाह करलो।

यह जैसे केवल एक सुयुक्ति एव सद्विवेचना की बात है—इसके भीतर जो एक भारी महत्व, वीरत्व अथवा असामान्य कुछ है ऐसा भाव उसमे लेशमात्र नही था।

इस बार मेरे हँसने की बारी थी। परन्तु मुझमे क्या उसी प्रकार हँसने की क्षमता थी। मैं उपन्यास के प्रधान नायक की भांति गम्भीर समुच्च भाव से कहने लगा, जितने दिन इस शरीर मे प्राण हैं।'

उसने बाधा देकर कहा, 'नही, नही और नही कहना पड़ेगा। तुम्हारी बात सुनकर मैं फिर नही बचूँगी।'

मैं पराजय स्वीकार न करके बोला 'इस जीवन मे अन्य किसी को भी प्यार नही कर सकूगा।'

सुनकर मेरी स्त्री खूब हँस उठी। तब मुझे रुक जाना पड़ा।

ज्ञात नही, उस समय स्वय के समीप भी कभी स्पष्ट स्वीकार किया था या नही, परन्तु अब समझ पा रही हूँ, इस आरोग्य आशाहीन सेवा काय स मैं मन-ही मन परिश्रान्त हो उठा था। इस काय से जी चुराया जाय, ऐसी कल्पना भी मेर मन मे नही थी, तो भी चिर जीवन को इस चिर रुग्ण के साथ व्यतीत करना पडेगा, यह कल्पना भी मेरे समीप पीडाजनक हो उठी थी। हाय, प्रथम यौवनकाल में जब सम्मुख देखा था तब प्रेम की माया मे सुख के आश्वासन मे, सौन्दय की मरीचिका मे सम्पूण भविष्यत् जीवन प्रफुल्ल दिखायी देता था। आज से लेकर अन्त तक केवल आशाहीन सुदीघ सतृष्ण मरुभूमि ही है।

मेरी सेवा म उस आन्तरिक थकावट को निश्चित रूप से वह देख पान लगी। तव नही जानता था, परन्तु अब सन्देह मात्र भी नही है कि वह मुझे सयुक्ताक्षर हीन प्रथम भाग 'शिशुशिक्षा' की भाति अत्यन्त सरलता से समझ गई, इसीलिए जब उपन्यास के नायक को सजाकर गभीर भाव से उसके समीप कवित्व बघारने जाता, वह ऐसे ही सुगम्भीर स्नेह अथच अनिवाय कौतुक के साथ हँस उठती थी। मेरी अपनी अगोचर अन्तर की बात भी अन्तर्यामी की भाति वह पूणत जानती थी, इस बात को सोचकर अपनी लज्जा से मर जाने की इच्छा होती है।

हाराल डाक्टर हमारा स्वजातीय था। उसके घर से हमे प्राय ही निमन्त्रण मिलता। कुछ दिन आने जाने के बाद डाक्टर ने अपनी लडकी के साथ मेरा परिचय करा दिया। लडकी अविवाहित थी, उसकी आयु पन्द्रह वष की रही होगी। परन्तु बाहर के लोगो द्वारा अफवाह सुनी थी—लडकी के कुल मे दोष था।

परन्तु और कोई दोष नही था। जैसा स्वरूप था वैसी ही शिक्षा थी। इसलिए बीच-बीच मे किसी किसी दिन उसके साथ अनेको बातो की आलोचना करते-करते मुझे घर लौटने म रात हो जाती थी, मेरी स्त्री की औषधि का समय निकल जाता था। वह जानती थी कि

मैं हारान डाक्टर के घर गया हूँ, परन्तु विलम्ब का कारण एक दिन भी मुझसे पूछा तक नही।

मरुभूमि के बीच फिर एक बार मरीचिका देखने लगा। तृष्णा जब छाती तक थी, तब आखो के सामने तट पयन्त स्वच्छ जल छल छल ढल-ढल करने लगा। उस समय मन को प्राणपण से खीचकर फिर लौटा नही सका।

रोगी का घर मेरे समीप दूना निरानन्द हो उठा। तब प्राय ही सुश्रूषा करने एव औषधि पिलाने का नियम भग होने लगा।

हारान डाक्टर मुझसे प्राय बीच बीच म कहता, 'जिसका रोग आरोग्य होने की कोई सम्भावना नही है उसके लिए मृत्यु ही अच्छी है, कारण, बचने पर उसे स्वय का भी सुख नही मिलेगा, दूसरा को असुख होगा।' बात को साधारण भाव से कहन म दोष नही है, तथापि मेरी स्त्री को लक्ष्य कर ऐसे प्रसङ्ग का उठाना, उसके लिए उचित नही था। परन्तु मनुष्यो के जीवन मृत्यु के सम्बन्ध मे डाक्टरो का मन एमा शुष्क होता है कि वे लोग ठीक से हम लागा के मन की अवस्था को समझ ही नही सकत।

अचानक एक दिन बगल वाले कमरे से सुन पाया, मेरी स्त्री हारानबाबू स कह रही थी, डाक्टर, इतनी व्यथ की औषधिया खिला-कर दवाखाने का कज क्यो बढा रहे हैं, मेर प्राण ही जब एक रोग हैं, तब ऐसी एक औषधि दो जिससे शीघ्र ही यह प्राण चले जाँय।'

डाक्टर बोला—'छि ऐसी बात मत कहना।

बात सुनकर अचानक मेरी छाती म गहरा धक्का लगा। डाक्टर के चले जाने पर अपनी स्त्री के कमरे म जाकर मैं उसकी खाट की पाटी पर बठ गया, उसके कपालो पर धीरे धीरे हाथ फिराने लगा। उसने कहा, 'यह कमरा बहुत गरम है, तुम बाहर जाओ। तुम्हारा टहलन को जाने का समय हो गया है। थोडा-सा न टहल आने पर फिर रात

मे तुम्हे भूख नही लगेगी ।'

टहलने को जाने का अथ डाक्टर के घर जाना था । मैंने ही उसे समझाया था, क्षुधा-सचार के लिए थोडा सा टहल आना विशेष आवश्यक ह । अब निश्चित रूप से कह सकता हूँ, 'वह प्रतिदिन ही मेरी इस छलना को समझती थी । मैं निर्बोध था, मन मे समझता था कि वह निर्बोध है ।'

यह कहकर दक्षिणाचरणबाबू बहुत देर तक हथेलियो पर मस्तक रक्खे चुपचाप बैठे रहे । अन्त मे बोले, 'मेरे लिए एक ग्लास पानी ला दो ।' पानी पीकर कहने लगे—

एक दिन डाक्टरबाबू की कन्या मनोरमा ने मेरी स्त्री को देखने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की । जाने किस कारण से उसका वह प्रस्ताव मुझे अच्छा नही लगा । परन्तु प्रतिवाद करने का कोई कारण नही था । वह एक दिन सन्ध्या के समय हमारे घर आ उपस्थित हुई ।

उस दिन मेरी स्त्री की पीडा अन्य दिनो की अपेक्षा कुछ अधिक बढ गई थी । जिस दिन उसकी व्यथा बढ जाती, उस दिन वह अत्यन्त स्थिर निस्तब्ध होकर पडी रहती, केवल बीच बीच मे मुटिठया बँध जाती एव मुँह नीला हो आता था, उसी से उसकी यन्त्रणा समझी जा सकती थी । घर मे कोई आहट नही थी मै खाट की पाटी पर चुपचाप बैठा हुआ था, उस दिन मुझे टहलने जाने का अनुरोध करती, इतनी सामर्थ्य उसमे नही थी, किम्वा शायद अधिक कष्ट के समय मैं पास ही रहूँ— ऐसी इच्छा उसके मन मे रहती थी । आखो की राशनी न लगे, इसलिए किरासिन तल की डिबरी दरवाजे की आड म रक्खी थी । घर अँधेरा एव निस्तब्ध था । केवल कभी कभी यन्त्रणा के कुछ कम होन पर मेरी स्त्री का दीघ नि श्वास सुनाई दे जाता था ।

ऐसे ही समय मनोरमा की कार प्रवेश-द्वार पर आ खडी हुई । विपरीत दिशा से डिबरी का प्रकाश आकर उसके मुँह के ऊपर पडा ।

इस उजाले-अँधेरे के कारण वह कुछ देर तक घर में कुछ भी न देख पाकर, द्वारा के समीप खड़ी हो, इतस्तत करने लगी।

मेरी स्त्री न चौककर मेरा हाथ पकड़ते हुए जिज्ञासा की, 'वह कौन है'' अपनी उस दुर्बल-अवस्था म अचानक अपरिचित व्यक्ति को देखकर भयभीत हो, मुझस दो तीन बार अस्फुट स्वर म पूछ बैठी, 'वह कौन है! वह कौन है जी?

मुझे कैसी दुर्बुद्धि हुई कि मैं पहले ही कह बैठा, 'मैं नही जानता।' कहते ही किसी न जैसे मुझे चाबुक मारा। दूसर ही क्षण बोला, 'ओह, हमारे डाक्टर बाबू की लडकी है।

स्त्री ने एक बार मेरे मुँह की ओर देखा, मैं उसके मुँह की ओर नही देख सका। दूसरे ही क्षण वह क्षीण स्वर मे अभ्यागत से बोली, 'आप आइये' मुझसे बोली, 'दीपक उठा लाओ।'

मनोरमा घर मे आकर बैठ गई। उसके साथ रोगी का अल्पस्वल्प आलाप चलने लगा। इसी समय डाक्टर बाबू आ उपस्थित हुए।

वे अपने दवाखाने से दवाओ की दो शीशी साथ लाये थे। उन दोनो शीशियो को बाहर निकालकर मेरी स्त्री से बोले—'यह नीली शीशी मालिश करने के लिए है और यह खाने के लिए है। देखना दोना को मिला मत देना, यह औषधि तेज जहर है।'

मुझे भी एक बार सतर्क कर दोनो औषधियो को खाट के पास रखी हुई टेबुल पर रख दिया। विदा लेने के समय डाक्टर ने अपनी कन्या को बुलाया।

मनोरमा ने कहा, 'पिताजी मैं यही क्यो न रहूँ। साथ मे कोई स्त्री नही है, इनकी सेवा कौन करेगा।'

मेरी स्त्री चचल हो उठी, बोली, 'नही, नही आप कष्ट न करें। पुरानी नौकरानी है माँ की तरह वह मेरी देखभाल करती है।'

डाक्टर ने हँसकर कहा, 'यह लक्ष्मी माता हैं, चिरकाल से दूसरो की सेवा करती आई हैं दूसरे की सेवा स्वय नही सह सकेंगी।'

कया को लेकर डाक्टर आने का उद्योग कर रहा था, इसी समय मेरी स्त्री वोली, 'डाक्टर वावू ये इस व द कमरे मे वडी देर स बैठे है, इ्ह एक वार बाहर टहला लायेंगे ?'

डाक्टर बाबू ने मुझसे कहा, 'आइये न, आपको नदी किनारे एक वार घुमा लाऊँ।'

मैं किंचित् आपत्ति दिखाकर बिना विलम्ब किए ही तैयार हो गया। डाक्टर वावू ने जाते समय दोनो शीशियो की औषधि के सम्ब ध मे फिर मेरी स्त्री का सतक कर दिया।

उस दिन मैंने डाक्टर के घर पर ही भोजन किया। लौटकर आने मे रात हा गई। आकर दखा मेरी स्त्री छटपटा रही हे। अनुताप से बिद्ध होकर जिज्ञासा की, 'तुम्हें क्या तकलीफ वट गई है ?'

वह उत्तर नहीं दे सकी, चुपचाप मेरे मुँह की आर दखा। उस समय उसका कण्ठ रुद्ध हो गया था।

मैं उसी क्षण, उसी रात म डाक्टर को बुला लाया।

डाक्टर पहले ता आकर बहुत देर तक कुछ भी नहीं समझ सका। अत म जिज्ञासा की, 'क्या वही व्यथा वढ उठी ह। औषधि क्या एक वार भी नही मली गई है ?'

कहकर शीशी को टेबुल से उठाकर देखा, वह खाली थी।

मेरी स्त्री से पूछा—'आपने क्या भूल से इस औषधि को पी लिया है।'

मेरी स्त्री ने गदन झुकाकर चुपचाप जताया 'हा।'

डाक्टर उसी समय गाडी लेकर अपन घर से पम्प लेन दौडा। मै अद्ध मूर्च्छित की भाँति अपनी स्त्री के बिछौने के ऊपर जा पडा।

तव, माता अपने पीडित शिशु को जिस प्रकार सान्त्वना देती है, उसी भाति उसन मेरे मस्तक को अपनी छाती के समीप खीचकर दाना हाथा के स्पश से मुझे अपन मन की बात समझाने की चेष्टा की। केवल अपने उस करुण स्पश के द्वारा ही मुझसे वारम्वार कहने लगी,

'शोक मत करो अच्छा ही हुआ, तुम सुखी होओगे, और उसी की सोच कर मैं भी सुख से मरूँगी।'

डाक्टर जब लौटा, तब जीवन के साथ साथ स्त्री की समस्त यन्त्रणाओं का अवसान हो चुका था।

दक्षिणाचरण फिर एक बार पानी पीकर बोले, 'ओह, बड़ी गर्मी है!' कहकर शीघ्रतापूर्वक बाहर निकले और बरामदे में चहल कदमी करके आ बैठे। खूब समझ गया, वे बोलना नहीं चाहते, परन्तु जादू करके मैं जैसे उनके पास से बात निकलवाये ले रहा हूँ। फिर आरम्भ किया—

मनोरमा को ब्याह कर देश में लौट आया।'

मनोरमा ने अपने पिता की सम्मति के अनुसार मुझसे विवाह किया, परन्तु मैं जब उससे सम्मान की बात कहता, प्रेमालाप कर उसके हृदय पर अधिकार करने की चेष्टा करता, वह हँसती नहीं, गम्भीर बनी रहती। उसके मन के किस कोने में खटका लगा हुआ था मैं किस प्रकार समझता।

इसी समय मेरा शराब पीने का व्यसन अत्यन्त बढ़ गया।

एक दिन शरद्‌ऋतु की प्रारम्भिक सन्ध्या में मनोरमा को लेकर अपने बरानगर के बगीचे में टहल रहा था। धीरे धीरे अँधेरा होता आ रहा था। पक्षियों के घोंसलों में पंख फड़फड़ाने का शब्द भी नहीं हो रहा था। केवल टहलने के मार्ग के दोनों ओर सघन छायावृत झाऊ के वृक्ष वायु के कारण शब्द करते हुए काँप रहे थे।

थकान अनुभव करते ही मनोरमा उस मौलश्री के नीचे शुभ्र पत्थर की वेदी के ऊपर लेट, अपनी दोनों बाहुओं पर मस्तक रखकर शयन करने लगी। मैं भी समीप आकर बैठ गया।

उस जगह अँधेरा और भी गहरा था, जहाँ तक आकाश को देखा जा सकता था, पूर्णतः तारों से भरा हुआ था। वृक्षों के नीचे की

झिल्लीध्वनि जैसे अनन्त आकाश की छाती से खिसकी हुई निस्तब्धता के निचले भाग म एक शब्दो की महीन पाड बुन रही थी।

उस दिन भी स ध्या के समय मैंने कुछ शराब पी थी, मन कुछ अधिक तरल-अवस्था म था। अँधेरा जिस समय आखो को बरदाश्त हो आया, उस समय वृक्षा की छाया के नीचे पाण्डुवण से अङ्कित उस शिथिल अचल श्रान्तकाय रमणी की धुँधली-सी मूर्ति ने मेरे मन मे एक अनिवाय आवेग का सचार कर दिया। मन को लगा, वह जसे एक छाया है, उसे जैसे किसी भी प्रकार दोनो हाथो से पकडा नही जा सकेगा।

इसी समय अन्धकारम झाऊ के वृक्षो की चाटी पर जैसे अग्नि सुलग उठी, तदुपरान्त कृष्णपक्ष का जीण प्रान्त पाण्डुवण चन्द्रमा धीरे धीर वृक्षो की चोटियो के ऊपर वाले आकाश मे चढ आया। श्वत पत्थरा के ऊपर श्वेत साडी पहने उस श्रान्त शयना रमणी के मुख के ऊपर ज्योत्सना आकर गिरी। मैं और ठहर नही सका। समीप आकर दोनो हाथों से उसके हाथो को उठाकर पकडत हुए कहा 'मनोरमा, तुम मुझ पर विश्वास नही करती, परन्तु तुम्हे मै प्यार करता हूँ। तुम्हे मै किसी भी समय भूल नही सकूगा।

बात कहते ही चाक उठा, याद आया ठीक यही बात और—एक दिन और किसी से भी कही थी। एव उसी क्षण मौलश्री के वृक्ष की डालियो के ऊपर होकर, झाऊ वृक्ष की चोटिया के ऊपर होकर, कृष्ण-पक्ष के पीतवण भग्न चन्द्रमा के नीचे होकर गगा की पूर्वी किनार से गगा के सुदूर पश्चिमी किनारे तक—हाहा हाहा हाहा करते हुए अत्यन्त द्रुत वेग से एक हसी बह गई था। मर्मभेदी हास्य था या अभ्रभेदी हाहाकार था, कह नही सकता। मैं उसी क्षण पत्थर की चौकी के ऊपर से मूर्च्छित होकर नीचे गिर पडा।

मूर्च्छा हटने पर देखा, अपन बिछौने पर सोया हूँ। स्त्री ने पूछा, 'तुम्हे अचानक ऐसा क्यो हो गया।

मैं कापता हुआ बाला, 'सुन नही सकी, सम्पूण आकाश को भर कर हा हा करती हुई एक हँसी यह गई थी ?

स्त्री न हँसकर कहा, वह क्या हँसी थी ? पक्तिबद्ध होकर पक्षिया का एक झुण्ड उड गया था, उन्ही के पखो का शब्द सुना था। तुम इतने थाडे म ही डर जाते हो ?'

दिन के समय स्पष्ट जान सका पक्षियो के पक्तिबद्ध उडने का शब्द ही होगा इस समय उत्तर की ओर से हँसो का झुण्ड नदी की रेती पर चरन के लिए आता है। परन्तु सन्ध्या होते ही इस विश्वास को नही रख पाता था। तब मन को लगता, चारो ओर सम्पूण अन्धकार भरकर घनी हँसी जमा हो गई है, तनिक-सा अवसर पात ही अचानक आकाश को भरकर, अन्धकार का चीरती हुई ध्वनि हो उठेगी। अन्त मे एसा हुआ सन्ध्या के बाद मनोरमा के साथ एक भी बात कहने का साहस मुझे नही होता था।'

तब अपने उस बरानगर के मकान से निकल, मनोरमा को ले, मोटर बोट मे बैठकर बाहर निकल पडा। अगहन मास म नदी की वायु से सम्पूण भय चला गया। कई दिन बडे सुख मे रहा। चारो आर के सौन्दय से आकृष्ट होकर मनोरमा भी जस अपन हृदय के बद द्वार को बहुत दिना बाद धीरे धीरे मेरे समीप खोलने लगी।

गगा छोडकर घाट घाट छोडकर, अत मे पद्मा नदी म आ पहुँचा। भयङ्करी पद्मा उस समय हेमन्त ऋतु की बाँबी म पडी भुजगिनी के समान दुबल निर्जीव भाव से सुदीघ शीत निद्रा मे निमग्न थी। उत्तरी तट पर जनशून्य, तणशून्य दिगन्त प्रसारित बालू के कण धू धू कर रह थे एव दक्षिण की ऊँची पाड के ऊपर गावो की अमराइया इस राक्षसी नदी के मुँह के अत्यन्त समीप हाथ जोडे खडी हुई काँप रही थी, पद्मा नीद की बेहोशी मे जब कभी करवट लेती ता विदीण तट भूमि झप झप करती हुई टूट टूट कर गिर पडती। इसी जगह घूमने-फिरने की सुविधा देखकर बोट को बाँध दिया।

एक दिन हम दोनो व्यक्ति टहलते-टहलते बहुत दूर चले गए। सूर्यास्त की स्वण छाया विलीन होते ही शुक्ल पक्ष का निमल चन्द्रलोक देखत देखते प्रस्फुटित हो उठा। इन अन्तहीन शुभ्र बालुकाकणो के ऊपर जब अजस्र मुक्त उच्छवसित ज्योत्सना एकदम आकाश के सीमान्त पयन्त प्रसारित हो उठी, तब मन को लगा जैसे जनशून्य चन्द्रलोक के असीम स्वप्नराज्य के बीच केवल हमी दो व्यक्ति भ्रमण कर रहे ह। एक लाल रङ्ग का लाल मनोरमा के मस्तक के ऊपर से खिसककर उसके मुख का ढकता हुआ उसके शरीर का आच्छन्न किये हुए था। निस्तब्धता जिस समय घनीभूत हो आई, केवल एक सीमाहीन, दिशाहीन शुभ्रता एवम् शून्य छोडकर जब और कुछ नही रहा, तब मनोरमा ने धीरे-धीरे हाथ बाहर निकाल कर मेरा हाथ दबा दिया। अत्यन्त समीप आकर वह जसे अपने समस्त शरीर-मन जीवन-यौवन को मेरे ऊपर सौप कर, नितान्त निभर हो, खडी हो गई। पुलकित उद्वेलित हृदय से मन म सोचा, घर के भीतर क्या यथेष्ट प्यार हो सकता है। इस भाति अनावृत मुक्त अनन्त आकाश के न होने पर क्या दो मनुष्य कही समा सकते है। उस समय मन का लगा, हमारा घर नही है, द्वार नही ह, कही भी लौटना नही है, इसी भाति हाथ मे हाथ डालकर अनिश्चितमाग पर उद्द्श्यहीन भ्रमण मे चन्द्रलोकित शून्यता के ऊपर होकर मुक्तभाव से चलत जायेंगे।

इस प्रकार चलते चलते एक जगह आकर देखा, उस बालुका राशि क बीच समीप ही एक जलाशय जैसा बना हुआ है, पद्मा के सूख जान के स्वाद उस स्थान पर पानी भर गया था।

उस मरु-बालुकावेष्टित स्तिरङ्ग निसुप्त निश्चल तालाब के ऊपर एक सुदीघ ज्योत्स्ना की रेखा मूर्च्छितभाव से पडी हुई थी। उसी जगह पर आकर हम दोनो व्यक्ति खडे हो गये मनोरमा ने क्या सोचकर मेरे मुह की आर देखा, उसके मस्तक के ऊपर स शाल अचानक खिसक

गया। मैंने उसके उस ज्योत्स्ना विकसित मुख को पकड़कर उठाते हुए चुम्बन ले लिया।

इसी समय उस जन मानव शून्य निमग मरुभूमि के बीच गम्भीर स्वर में कोई तीन बार बोल उठा, 'वह कौन है? वह कौन है? वह कौन है?'

मैं चौंक उठा, मेरी स्त्री भी कांप उठी। परन्तु दूसरे ही क्षण हम दोनों व्यक्ति समझ गए यह शब्द मानुषिक नहीं है अमानुषिक भी नहीं है—रेत पर विहार करने वाले जलचर पक्षियों का शब्द है। अचानक इतनी रात में अपने निरापद निभृत निवास के समीप लोकसमागम देखकर वे चकित हो उठे थे।

उस भय से चौंककर हम दोनों व्यक्ति झटपट बोट पर लौट आये। रात में बिछौने पर आकर सो गये श्रान्त शरीर मनोरमा को अविलम्ब नींद आ गई। उस समय अंधकार में कोई एक व्यक्ति मेरी मसहरी के समीप खड़ा होकर सुषुप्त मनोरमा की ओर केवल एक दीर्घ शीर्ण हड्डीमात्र उँगली का निर्देश करके जैसे मेरे कान ही कान में अत्यन्त चुपचाप अस्फुट कण्ठ से केवल जिज्ञासा करने लगा, 'वह कौन है? वह कौन है! वह कौन है जी।'

झटपट उठकर दियासलाई जलाकर बत्ती उठाई। उसी समय छायामूर्ति विलीन हो गई, मेरी मसहरी को कँपाकर, खाट को हिलाकर, मेरे सम्पूर्ण पसीने से तर शरीर के रक्त का हिम बनाकर, हाहा हाहा करती हुई एक हँसी अँधेरी रात के भीतर से बहती हुई चली गई। पद्मा पार हुई, पद्मा का रेत पार हुआ, उसके परवर्ती समस्त सुप्त देश, ग्राम, नगर पार हो गए—जैसे वह चिरकाल से लेकर देश दशांतर लोक-लोकान्तरों से पार हो क्रमश क्षीण क्षीणतर, क्षीणतम होकर असीम सुदूर में चली जा रही थी, क्रमश जैसे वह जन्म मृत्यु के देश को छोड़कर गई, क्रमश वह जैसे सुई की नोक की तरह क्षीणतम हो आई, इतना क्षीण शब्द कभी भी नहीं सुना था, कल्पना भी नहीं की

थी, मेरे मस्तिष्क के भीतर जैसे अनन्त आकाश भरा हुआ था एव वह शब्द जितना ही दूर जाता, किसी भी प्रकार मेरे मस्तिष्क की सीमा उसे छोड नही पा रही थी, अन्त मे, जब एकान्त असह्य हो उठा तब सोचा, प्रकाश न बुझा देने पर सो नही सकूगा। जब प्रकाश बुझा कर सोया, तभी मेरी मसहरी के पास, मेरे कान के समीप, अँधेरे मे फिर वही अवरुद्ध स्वर बोल उठा, 'वह कौन है, वह कौन है वह कौन है जी।' मेरी छाती का रक्त ठीक समान-ताल मे क्रमश ध्वनित होने लगा, 'वह कौन है, वह कौन है, वह कौन है जी। वह कौन है वह कौन है वह कौन है जी'' उसी घनी रात म निस्तब्ध कोट के बीच मेरी गोलाकार घडी भी सजीव होकर अपने घण्टो के काँटे को मनोरमा की ओर फैलाकर शेल्फ के ऊपर से ताल पर ताल देती हुई कहने लगी 'वह कौन है वह कौन है, वह कौन है जी। वह कौन है, वह कौन है, वह कौन है जी''

कहते कहते दक्षिण बाबू राख जैसे रङ्ग के हो आये उनका कण्ठ रुद्ध हो आया। मैंने उन्हे स्पर्श करते हुए कहा 'थोडा-सा जल पीजिये।

इसी समय अचानक मेरे मिट्टी के तेल की ढिबरी धुप् धुप करती हुई बुझ गई। मैंने अचानक देख पाया, बाहर प्रकाश फैला है। कौए बोल उठे है। दोयल (एक छोटी सी चिडिया) सीटी दे रही है। मेरे मकान के सामने वाली सडक पर एक भैंसागाडी का 'काच् काच्' शब्द हो रहा है। उस समय दक्षिणाबाबू के मुख का भाव एकदम बदल गया। भय का कुछ भी चिह्न नही रहा। रात की माया मे, काल्पनिक शका की मत्तता मे मेरे समक्ष जो इतनी बातें कह डाली थी, उसके लिए जैसे अत्यन्त लज्जित एव मेरे ऊपर मन ही मन क्रुद्ध हो उठे। शिष्ट-सम्भाषण किये बिना ही अचानक उठकर द्रुतगति से चले गये।

उसी दिन आधीरात मे फिर मेरे द्वार पर आकर दस्तक लगी, 'डाक्टर। डाक्टर!'